सारिका

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २६, अंक ४१४, अक्तूबर, ८६ प्रथम पक्ष, मूल्य : ५ रुपये

प्रेमचंद एवं लू-शुन विशेषांक

बच्चों के लिए आकर्षक उपहार

लोकप्रिय, शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक बाल-साहित्य
पढ़कर ज्ञानवृद्धि करें।

पुस्तक	मूल्य
अमर मुस्कान	10.00
आँवला दान ले०: ए०के० विद्यालंकर	8.00
भारत की आध्यात्मिक कथाएं ले०: चमनलाल	7.00
भारत तुम्हारा और मेरा ले०: कमला डोंगरकेरी	6.00
बाल महाभारत (भीष्म प्रतिज्ञा) भाग-1 ले०: प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	5.00
बाल-महाभारत (चक्रव्यूह) भाग-2 ले०: रामेश्वर उपाध्याय	4.50
बाल महाभारत (लाक्षागृह) भाग-3 ले०: राष्ट्रबंधु	5-50
छोटी छोटी चुभन ले०: मालती शंकर	9.00
देश विदेश की लोक कथाएं	7.50
हंसते हुए मोती ले०: चन्द्रदत्त 'इन्दु'	8.00
सारथी का बेटा	12.00
सुन्दर लोक कथायें	6.00
शेर का दिल ले०: बंसीलाल	6.50
सुभाष चन्द्र बोस	4.00
विश्व की श्रेष्ठ लोक कथायें - भाग-1 ले०: हिमांशु जोशी	7.50
विश्व की श्रेष्ठ लोक कथायें - भाग-2 ले०: विमला रस्तोगी	8.00
यह गाथा वीर जवाहर की ले०: कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	7.00
आट-पाट नगर की कहानियाँ	11.00
आधुनिक पंजाबी कहानियाँ सं० अजीत कौर	11.00
ज्ञान सरोवर, भाग-1	24.00
ज्ञान सरोवर भाग,-2	4.50
ज्ञान सरोवर, भाग-3	28.00
विवेकानन्द चित्रावली	8.25
रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बाल कहानियाँ	11.50
एक दिन का मेहमान ले०: काशीनाथ गोविन्द जोगलेकर	5.50
जंगल के नागरिक ले०: राजेन्द्र अवस्थी	6.00
भारत की वीरांगनाएं ले०उषा बाला	12.50

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर समस्त पुस्तकों (5 रु० तथा अधिक मूल्य) की खरीद पर 10% की छूट दी जाती है। विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं। निःशुल्क सूची-पत्र मंगाइए। डाक खर्च मुफ्त)

25 रु० से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रजिस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा। पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेताओं से लें अथवा सीधे हमें लिखें।

व्यापार व्यवस्थापक,
विक्रय केन्द्र,
प्रकाशन विभाग

● पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 ● सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली - 110001 ● बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक-बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 ● 10-बी स्टेशन रोड, लखनऊ-226019 ● 8, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 ● कामर्स हाउस, (दूसरी मंजिल), करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038 ● एल०एल०ए० आडिटोरियम, अन्ना सलै, मद्रास-600002 ● स्टेट आर्कोलाजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-500004 ● प्रैस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001

davp 86/77

हिन्द पॉकेट बुक्स
द्वारा
एक और क्रान्तिकारी पहल

प्रेमचंद रचनावली

विश्व के महान् कथा-शिल्पी

प्रेमचंद

के उपन्यास, कहानियां और नाटक
अमृतराय के निर्देशन में सम्पादित प्रेमचंद साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन

- असंक्षिप्त
- सम्पूर्ण
- प्रामाणिक
- मूल पाठ

विश्व के महान् कथा-शिल्पी की अमर रचनाओं के सरस्वती सीरीज़ संस्करण

- बड़ा आकार
- बढ़िया कागज़
- कलात्मक मुद्रण
- आकर्षक लेमिनेटेड कवर

सभी पाठकों के लिए सुंदर, सुरुचिपूर्ण अल्प-मोली दस्तावेज़ी पुस्तकें

पहले सेट में प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास

उपन्यास	मूल्य
निर्मला	१२/-
गबन	१८/-
रंगभूमि (दो भाग)	प्रत्येक २०/-
रूठी रानी (व असरारे मआबिद)	१२/-
सेवासदन	१८/-
वरदान	१२/-
प्रेमाश्रम (दो भाग)	प्रत्येक १५/-
कर्मभूमि (दो भाग)	भाग - १-१२/- भाग-२-१५/-
प्रेमा (तथा हमखुर्मा व हमसवाब)	१५/-
प्रतिज्ञा	१२/-

[१० उपन्यास १३ जिल्दों में ● कुल मूल्य १९६/-]

● प्रेमचंद की अमर कृतियों का अगला सेट आगामी मास प्रकाशित कर दिया जाएगा। ● इस सेट में सम्पूर्ण कहानियाँ और नाटक होंगे। ● यदि आप घर बैठे प्रेमचंद का साहित्य पढ़ना चाहें, तो प्रेमचंद रचनावली बुक क्लब के सदस्य बनें।

● प्रेमचंद साहित्य की १००/- की पुस्तकें एक साथ मंगाने पर डाक-खर्च हम वहन करेंगे ५० रुपये तक की पुस्तकों पर आधा डाक-खर्च आपको देना होगा।
● यदि आप अगला सेट भी प्राप्त करना चाहते हैं, तो अपना आदेश पहले ही दर्ज करा दें।

हिन्द पॉकेट बुक्स आप अपने नजदीकी बुक स्टाल से प्राप्त कर सकते हैं। यदि मिलने में कोई कठिनाई हो, तो हमें लिखें। हम आपकी सेवा के लिए तत्पर।

भारतीय कॉपी राइट कानून की धारा २२ के अनुसार प्रेमचंद साहित्य के पेपर बैक संस्करणों का प्रकाशन अधिकार १ जनवरी १९८७ तक हिन्द पॉकेट बुक्स के पास सुरक्षित है।

वी.पी.पी. द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए मनीआर्डर द्वारा १० रुपये अग्रिम भेजें।

हिन्द पॉकेट बुक्स (प्रा.) लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली - ११० ०३२

सारिका

कहानियों और कथाजगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 24; अंक : 414; 1-15 अक्तूबर, 1986

प्रेमचंद एवं लू शुन विशेषांक

आवरण :
चित्रांकन : अमित
संयोजन : सुमीता

प्रेमचंद खंड

कहानियां

साक्षात्कार

मूल्यांकन

विशेष आकर्षण

लू शुन खंड

कहानियां

साक्षात्कार

संस्मरण

विशेष आकर्षण

अन्य सामग्री/विविध

संपादकीय पताः सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

आपकी बात

अगस्त प्रथम १९८६

अरथी बनाम अरथी

सारिका का अंक पढ़ा. सुदृढ़ विचारों को मस्तिष्क में हिलोरें लेते हुए मार्मिक प्रश्नों को, भाषा की मालाओं को अलंकरित मोतियों से सजाकर कथा कथ्य के हर क्षेत्र के पात्रों को, पाठकों के जीवन का जीवंत मर्मस्पर्शी चित्रण करके वस्तु और प्रतिबिंब के बीच की दीवार को जड़ से गिराकर वास्तविकता का परिचय कराने का जो बेहतरीन प्रयास इस अंक में किया गया है वह अविस्मरणीय है.

'कहानी की जमीन' पर **रमेश उपाध्याय** की लेखनी ने **'आदमी की पहचान'** को हिंदी कहानी में ढूंढ़ने का अथाह प्रयास किया है. 'मैं' या 'वह' जैसे दो शब्दों में आदमी का अस्तित्व निहित हो गया— उसका व्यक्तित्व व चरित्र और उसकी आदमियत अपनी वास्तविकता से परे हो गयी है. **कर्तारसिंह दुग्गल** की कहानी **'काले पानी के रेतीले किनारे'** में नयी जीवन ज्योति को उभारने का, नये जीवन के प्रति एक आस्था पैदा करने का प्रयास किया है वहीं **बीर राजा** ने **'अरथी'** में वर्तमान आतंकवाद के प्रति जनमानस का ध्यान खींचा है. घटित घटनाओं में मानवीय मूल्यों का कोई मूल्य नहीं... 'अरथी' चाहे मृत शरीर को मरघट तक ढोने के लिये हो या फिर आदर्शों की विदा लाश ले जाने के लिये हो, अरथी अरथी है, जिसे कंधे पर लादना पड़ता है. कई उपजातियों में बंटे, हम सभी, कैसे एक हो पायेंगे... कहीं कोई किरण नहीं दिखाई देती.

मार्कंडेय सिंह की **'कजरी की वापसी'** में इस सत्यता से मुख नहीं मोड़ा जा सकता कि जिंदगी एक ऐसा चुनौती भरा संघर्ष है जिसे खेल समझकर नहीं खेलना चाहिए... प्रेम और कामवासना में अंतर को न समझ पाना भी जिंदगी का कड़वा सच होता है. कभी कभी अपना विश्वास ही धोखा हो जाता है. लेखक कजरी जैसे चरित्र को लेखनी से समाज का आवश्यक अंग बताता है, पर उसकी भी एक उम्र तक सीमा निश्चित कर देता है.

'एक और दिन' में **अकुलेश परिहार** ने वृद्धावस्था में उभरती असहनीय स्थिति के दर्द का एहसास कराके बुजुर्ग पीढ़ी के साथ न्याय किया है.

'समय करेगा फैसला' जैसी रचना क्षुब्ध युवा पीढ़ी को एक ओर समाज में फैली अव्यवस्था के प्रति, भ्रष्टाचार के प्रति, गंदी राजनीति के प्रति लड़ने को उत्साहित करती है, वहीं परिवार से जुड़ी जिम्मेदारियों का एहसास कराके उसके विद्रोह को लापरवाह, कामचोर, आवारा, कहकर समाप्त करती है.

धारावाहिक उपन्यास **'बंधन'** (**नरेंद्र कोहली**) कई बार पढ़ा. अब तक प्रकशित तीनों अंकों का विश्लेषण करने पर मुझे यही महसूस हुआ कि लेखक पुराणों में जमी कथा को, वर्तमान संदर्भ में व्यावहारिक पहलुओं को तर्क वितर्क के जाल से मुक्त कर्म को हर इच्छा से महान कहना चाहता है. लेखक भी कहीं-कहीं अनभिज्ञ-सा लगा है. जब उपन्यास के मुख्य पात्र देवव्रत के मन में उभरते प्रश्नों का कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता... पिता ने पुत्र को जन्म दिया. पुत्र पर पिता का पूर्ण अधिकार है. शरीर पर, प्राण पर अधिकार हो सकता है पर मन की इच्छाओं पर नहीं...पिता की कामना पूर्ति के लिये पुत्र का इतना बड़ा त्याग भले ही इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अंकित हो पर मनुष्य की श्रेणी में देवव्रत अपूर्ण मनुष्य कहे जायेंगे. धर्म, प्रेम, समाज व परिवार का औचित्य, कहां तक जीवन में अपना अर्थ रखते हैं? नहीं मालूम... पर लेखक ने अपने गहन अध्ययन से, अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जीवन की सूक्ष्मता को मर्मस्पर्शी ढंग से सुरुचिपूर्ण भाषा का सहारा लेकर, कलात्मक दृष्टि से भी देवव्रत जैसे चरित्र को चारित्रिक दृढ़ता प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है. मेरी आत्मा बधाई दिये बगैर चिंता मुक्त नहीं हो सकती....

● **सुधीर तिवारी, इलाहाबाद (उ.प्र.)**

ये, वे और आप!

कर्तारसिंह दुग्गल लिखित कहानी **'काले पानी के रेतीले किनारे'** पहले पंजाबी पत्रिका 'आरसी' में प्रकाशित होने पर मात्र सुन सका था. तथा अब सारिका द्वारा रूबरू पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. वैज्ञानिक दृष्टिकोणीय तथ्य की रोमांटिक प्रस्तुति तथा विषय का अलगावपन रचना को मस्तिष्क में काफी दिन विश्राम करायेगा. परंतु इस अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना कहलाने का अधिकार **बीर राजा** की रचना **'अरथी'** को ही प्राप्त होता है. वाकई आज स्वयं इंसान स्वयं ही भीड़ बनकर स्वयं की ही इहलीला समाप्त कर स्वयं को ही अरथी पर लादे चला जा रहा है तथा उसे स्वयं यह नहीं पता कि वह स्वयं की ही अरथी है जिसे कि वह स्वयं ढो रहा है.

मोहर सिंह यादव की रचना **'हवेली के रिश्ते'** अपने नयनों की भाषा से सभी कुछ बयान करके भी होठों को सिले रही तथा यही रचनाकार की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि भी है.

किरण चंद्र शर्मा की **'माटी मटैल'** सपाट बयानी की अगली कड़ी के रूप में दृष्टिगोचर होती है. वास्तव में जो होना चाहिये वह होता नहीं, तथा जो नहीं होता वह दिखाया जाता है. तथा जो दिखाया जाता है उसे जनता की आवाज का नाम भी दिया जाता है. तथा जो वास्तविक जनवाणी है होना उसे ही चाहिये पर वास्तव में जो होना चाहिये....

लोग गांव छोड़कर शहर भाग रहे हैं. क्यों? इसकी एक सत्यता से परिपूर्ण तथ्य के रूप में जवाब देती है **रामधारी सिंह दिवाकर** की कहानी **'आतंक'**.

'समय करेगा फैसला' रचना **राकेश तिवारी** की कोई भेद नहीं खोलती बल्कि चलचित्र ही दिखाती है.

'एक और दिन' (**अकुलेश परिहार**), **'मथुरादास की डायरी'** (**मथुरादास**), **'पराजित पीढ़ी के नाम'** (**रवींद्रनाथ त्यागी**) इत्यादि का लेखन तथा लेखनी प्रशंसनीय है, सभी संबंधित रचनाकारों को बधाई.

● **पीयूष नाथ सुकुल 'सुधा', धाड़ीवाल, गुरदासपुर.**

भारतीय नारी पाश्चात्य विचार

इंदिरा नूपुर की कहानी **'धूप खिल उठी'** पढ़ी. पढ़कर लगा कि लेखिका ने नारी को जो उनकी कहानी में भारतीय है पाश्चात्य सभ्यता के काफी नजदीक लाकर खड़ा कर दिया है. कहानी के कुछ उद्धृत अंश **'दुनिया में हजारों बच्चे अनाथ हो जाते हैं, हम किस-किस की फिकर करेंगे.'**

'पिता जीवित रहे तो बच्चों को मां भी मिल जाती है.' आदि बड़े ही सहज ढंग से कहलवा दिये गये हैं.

'काले पानी के रेतीले किनारे' कहानी दिलचस्प एवं रोचक लगी. **नरेंद्र कोहली** का **'बंधन'** उपन्यास ऐतिहासिकता को लिए हुए काफी मर्मस्पर्शी एवं रोचक तथा पठनीय है.

● **पी. एम. मिश्रा. औरैया, इटावा**

अग्रणी पत्रिका

सारिका के इस अंक की **'हवेली के रिश्ते'** शीर्षक आंचलिक कहानी आखों से निकालकर, मैं अपने इलाके से जा जुड़ा हूं. वैसे भी आंचलिक भाषाओं को प्रोत्साहन देने में सारिका अन्य पत्रिकाओं से अग्रणी है. जनता में नेता की तरह से. प्रस्तुत कहानी में जहां-तहां ग्रामीण शब्दों एव मुहावरों का उपयुक्त प्रयोग नहीं हो पाया है. ये तूज हैं. चौड़े कांच में छोटे बटनों की तरह से. तो भी सामंतवाद का छिछलापन पाठकों को परोसने के लिये लेखक को बधाई.

● **रत्न कुमार सांभरिया, जयपुर**

मन को छू गयी

रामधारी सिंह दिवाकर की कहानी **'आतंक'** मन को छू गयी. कहानीकार ने मानव-चरित्र की नब्ज पर हाथ रखा है. आज गांव भी अपना चरित्र छोड़ रहा है. दोस्त-दोस्त को अनचीन्हा लगता है. नेता स्वार्थ में असामाजिक तत्वों को प्रश्रय दे रहे हैं. शांतिप्रिय साधारण जन आज के अराजक माहौल में सब कुछ सहकर रहने को विवश है. वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता. आज की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों पर चोट करती कहानी के लिए लेखक को बधाई. **'कजरी की वापसी'** और **'हवेली के रिश्ते'** भी काफी अच्छी लगीं.

● **कात्नेश्वरी प्रसाद मंडल, कटिहार**

चांटे की आवाज

'माटी मटैल' के रचनाकार ने जिस वातावरण को बनाया है और उसका, उसी खूबी से अनुपम, अतिशयोक्ति रहित वर्णन करते हुए व्यवस्था पर शब्दों का जो चांटा मारा है, उसका एहसास भले ही व्यवस्थापकों को न भी हो, लेकिन उस चांटे की आवाज **'सारिका'** के पाठकों के कानों में अवश्य पड़ी है.

कितने ही चंद्र फावड़े से अपनी प्रतिछाया को समाप्त करने के अथक प्रयास में रत होंगे और व्यवस्था उनका मखौल उड़ाने में...

● **सुनील राही, बंबई.**

यह कौन-सा क्षेत्र है ?

'कजरी की वापसी' पढ़कर दुखी हुआ. **मार्कंडेय सिंह** को शायद पता नहीं कि मुजफ्फरपुर के आसपास के लोग भोजपुरी नहीं बोलते. मुजफ्फरपुर की 'कजरी' की भोजपुरी बोली से कथाकार ने कोयल से तोते की आवाज सुना दी. धन्यवाद. साहित्यकार को समाज की कम जानकारी है. मुजफ्फरपुर के आसपास की बड़ी जाति के लोग पत्नी को साथ लेकर कलकत्ता या गौहाटी नहीं जाते. या तो वे पत्नी को बाद में ले जाते हैं या इस बला को वहीं अर्जित करते हैं.

● **राजेंद्र सिंहा, मिस्खनाढ़ोरी, चंपारण**

यह भी कीजिए, वह भी कीजिए

रवींद्रनाथ त्यागी चुक रहे लगते हैं, कृपया स्तंभ बंद कीजिए.

मथुरादास का छद्मनाम उजागर कीजिए. बेहद बढ़िया लिख रहे हैं.

(शायद शासकीय सेवक तो नहीं होंगे.)

दो-तीन गज़लें हर अंक में दीजिए. लघुकथाओं की तरह.

मैथलीशरण गुप्त की जन्म तिथि लिखें. मृत्यु (तिथि) की जगह जिस तरह 'महाप्रयाण' लिखा. उस तरह उन्हें राष्ट्रकवि जरूर लिखना था. वे सरकारी राष्ट्रकवि नहीं, जनता के राष्ट्रकवि थे.

अंग्रेजी,जर्मन, फ्रेंच, कथाकारों के अनुवाद आने चाहिए.

● **डा. देवव्रत जोशी, चांदला (म. प्र.)**

बेआबरू होते गांव-घर

रामधारी सिंह दिवाकर लिखित **'आतंक'** ने सर्वाधिक प्रभावित किया और स्वयं को कुछ लिखने से रोक नहीं पाया कहानी के प्रभाव से.

गांव के ऐसे आतंकित माहौल में रामनरेश जी जैसे परिवार की कहानियां एक-दो नहीं अनेकों हैं और कथित गांवों की भी कमी नहीं है हमारे देश में. गांवों की राजनीति कितनी गंदी हो गयी है. लोग किस तरह अपना उल्लू सीधा करने में लगे हैं यह लेखक ने अपनी कहानी में मुखिया के चरित्र द्वारा बताया है. ऐसे मुखिया गांव का विकास करने और लोगों की कठिनाईयां दूर करने के बदले अपना विकास और अपनी कठिनाइयां दूर करने में लगे रहते हैं. वाह रे मुखिया जो डकैतों के साझीदार हैं. उनके कानूनी सलाहकार हैं. और हाय रे गांव और ग्रामीणों का दुर्भाग्य, जो ऐसे वातावरण में अपनी जिंदगी जी रहे हैं. ऐसे में कोई सभ्य परिवार अपने प्राणों और आबरू की रक्षा करे भी तो कैसे ? अन्याय को बर्दाश्त कर, अपमान और ग्लानि के कड़वे घूंट पीकर या फिर अपने आपको नपुंसक बनाकर. शासन व्यवस्था से किसी प्रकार की उम्मीद करना तो स्वयं को धोखा देना है.

लेखक की जीवंत रचना के लिए धन्यवाद.

● **चंद्रशेखर घोष, बांका (भागलपुर)**

श्रद्धांजलि

पुरातत्व के रोमांस और रोमांच से हिंदी कथा-जगत के पाठकों, अध्येताओं को परिचित कराने वाले ख्यातनामधन्य साहित्यकार श्री अंबिका प्रसाद दिव्य के देहावसान पर सारिका-परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि.

बुंदेलखंड के गौरव कहे जानेवाले उद्‌भट विद्वान, कवि, उपन्यासकार और चिंतक श्री अंबिका प्रासद दिव्य का गत ५ सितंबर को अजयगढ़ (जिला-पन्ना) में शिक्षक दिवस समारोह की अध्यक्षता करते हुये हृदय गति रूक जाने से देहावसान हो गया. दिव्य जी ८० वर्ष के थे. १६ मार्च, १९०७ को अजयगढ़ में जन्में दिव्यजी जीवन पर्यंत साहित्य और कला की साधना करते रहे. दिव्यजी ने ६० महत्वपूर्ण ग्रंथों का सृजन किया है. आदर्श प्राचार्य के रूप में दिव्यजी को १९६१ में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. कई कृतियों पर साहित्यिक पुरस्कार भी प्राप्त हुये थे. दिव्य जी हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू के प्रकांड पंडित थे. दिव्यजी के गौरव ग्रंथों में गांधी-पारायण, बुंदेलखंड चित्रावली, खजुराहो चित्रावली, निमियां, मनोवेदना; जयदुर्ग का रंगमहल, पीताद्रि की राजकुमारी, काला भौंरा, असीम की सीमा, खजुराहो की अतिरूपा, जूठी पातर, दी वीमेन ऑफ खजुराहो प्रमुख हैं. साहित्य-कला के लिये समर्पित इस अप्रतिम व्यक्तित्व के महाप्रयाण पर संपूर्ण साहित्य जगत शोक संतप्त है. साहित्य और कला के इस महान साधक को श्रद्धांजलि

प्रस्तुति : देवी दयाल पाठक

आज से 50 वर्ष पूर्व एशिया की दो महान कथा प्रतिभाएं विश्व कथा साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़कर दिवंगत हो गयी थीं. ये अमर प्रतिभाएं थीं—मुंशी प्रेमचंद और लू शुन. यह कथा-साहित्य के लिए बहुत बड़ा हादसा था. हालांकि 'सारिका' इन दोनों पर अलग-अलग विशेषांक निकाल चुकी है, फिर भी महान प्रतिभाओं पर जितना भी प्रकाशित किया जाये, कम है. इन दोनों पर संयुक्त विशेषांक की योजना सिर्फ इसलिए बनायी क्योंकि दोनों अक्तूबर 1936 में दिवंगत हुए थे. दोनों ने अपने वक्त में लगभग एक से हालात का सामना किया था. दोनों ही मुक्ति की लड़ाई के सिपाही थे. दोनों ही मध्यम और सर्वहारा वर्ग के, विशेष रूप से खेतिहर मजदूरों के पक्षधर थे. दोनों ही गांव की जिंदगी के चितेरे थे.

महान प्रतिभाएं देश और काल की सीमाओं में रहकर भी सीमातीत होती हैं. वैचारिक धरातल पर उनमें एक सूक्ष्म तादत्म्य भी होता है. ये प्रतिभाएं आने वाली पीढ़ियों को किसी न किसी रूप में लगातार प्रभावित करती रहती हैं. प्रेमचंद और लू शुन के संबंध में भी यह बात निर्विवाद रूप से सच है. थोड़ी देर के लिए हम उन्हें किसी भी वाद विशेष से अलग कर लें, तब भी इनकी वैचारिक क्रांति दृष्टि में किसी तरह का अंतर नहीं आयेगा. इनकी वैचारिक क्रांति दृष्टि को सही संदर्भ में समझ पाना ही इनके प्रति सच्ची श्रृद्धांजलि है.

प्रेमचंद और लू शुन दोनों ने ही अपने समाज का अति संवेदनशील चित्रण किया है. जहां लू शुन के मन में अर्द्ध सामंती चीन के शोषितों और अभागों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और संवेदना थी वहीं प्रेमचंद के मन में सामंती नियति और संस्कारों में जकड़े तथा उपनिवेशी शोषितों और अभागों के प्रति उतना ही प्रेम और संवेदना थी. दोनों ने ही अपनी शक्ति भर पाखंडों और अंधविश्वासों के मकड़जाल को तोड़ने की कोशिश की है. इसीलिए ये दोनों समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हिस्सेदारी निभा सके. सामंती संस्कार आदमखोर रहे हैं. आदमी को बचाने के लिए जरूरी है कि समाज को सामंती संस्कारों से मुक्ति दिलायी जाये. लू शुन जिंदगी भर इस मुक्ति के लिए लड़ते रहे और प्रेमचंद ने इसी मुक्ति के लिए 'कफन' जैसी कहानी लिखी.

शुरू में काफी लंबे समय तक प्रेमचंद सामंती संस्कारों का पोषण करते नजर आते हैं लेकिन बाद में उनकी पक्षधरता स्पष्ट होती चली गयी है. दूसरी ओर लू शुन ने अपने लेखन की शुरूआत ही उन संस्कारों के विरोध से की. 1905 में उनकी यह धारणा बन गयी थी कि दबे-पिसे लोगों को दवा की उतनी जरूरत नहीं जितनी उनके दृष्टिकोण में बदलाव की है. और यह बदलाव साहित्य के द्वारा संभव है और तभी से उन्होंने कलम की शक्ति में आस्था व्यक्त कर ली थी. इस तरह देखें तो प्रेमचंद और लू शुन के रास्ते शुरू में अलग-अलग दिशाओं में जाते नजर आते हैं लेकिन आगे चलकर वे लगभग मिलने की सीमा तक करीब आ गये हैं. 'सारिका' का यह अंक एशिया के इन दो महान रचनाकारों की स्मृति को समर्पित है.

'दबे-पिसे लोगों को दवा की उतनी जरूरत नहीं, जितनी उनके दृष्टिकोण में बदलाव की है'

● ● ●

इस अंक के साथ ही हम एक सूचना भी अपने पाठकों तक पहुंचा देना चाहते हैं कि इस महीने 'सारिका' का एक ही अंक प्रकाशित हो रहा है. और अगले महीने से 'सारिका' अपनी मूल स्थिति में आ जायेगी. मूलतः 'सारिका' मासिक पत्रिका थी और 16 वर्ष से अधिक अवधि तक यह महीने में एक बार ही प्रकाशित होती थी. प्रयोगात्मक रूप से इसे मार्च 1977 से पाक्षिक किया गया था और साढ़े नौ वर्ष तक यह क्रम बनाये रखा गया. अब छपाई, कागज आदि की कीमतें और खर्चे बढ़ जाने के कारण हमारे सामने दो ही विकल्प थे कि या तो इसके मूल्य में भारी वृद्धि की जाये या मामूली मूल्य वृद्धि और पृष्ठ वृद्धि के साथ इसे महीने में एक बार प्रकाशित किया जाये. हमें पाठकों की सुविधा और हित में दूसरा विकल्प ही अधिक उपयुक्त लगा. हमें पूरा विश्वास है कि आप भी इस विकल्प को पसंद करेंगे और इसका स्वागत करेंगे.

साक्षात्कार

प्रेमचंद से बड़ा आशिक दूसरा नहीं

अमृतलाल नागर

अमृतलाल नागर और कमल गुप्त के बीच अंतरंग बातें

प्रेमचंद को, प्रेमचंद के साहित्य को और अब तक हुए उनके मूल्यांकन को इधर नये ढंग से देखने की कोशिशें हो रही हैं. कुछ पुरानी मान्यताएं ढह रही हैं और कुछ नयी मान्यताएं स्थापित हो रही हैं, पर इनसे परे भी बहुत कुछ है, जिसे यहां उद्घाटित कर रही है यह अनौपचारिक बातचीत—

इधर पिछले कई वर्षों के दौरान प्रेमचंद पर तमाम गोष्ठियों और समारोहों का दौर चला. पूरी यात्रा में प्रेमचंद को कई रूपों में तराशने की कोशिशें की गयीं, स्वीकारने और नकारने के भी सिलसिले चले, बेशुमार सवालों के बीच से होकर प्रेमचंद को गुजरना पड़ा. नागरजी के लिए ये तमाम बातें प्रेमचंद के साथ की गयी ज्यादतियों का एक ताजा हिसाब के सिवा और कुछ नहीं हैं, जो प्रायः प्रेमचंद की सही तसवीर पेश करने से बाज आयी हैं. एक ऐसी ही गोष्ठी के हवाले से अफसोस जाहिर करते हुए मैंने आगे कहा.

वाकई बहुत ही अफसोस की बात है नागर जी. हमारी मानसिकता कितनी क्षुद्र हो गयी है, इसका भी एक किस्सा बताऊं. अभी पिछले दिनों दिल्ली में प्रेमचंद पर एक सेमिनार हुआ और जिसमें जदीद अफसानों पर ही बातें होती रहीं. जरा गौर कीजिए, सेमिनार है प्रेमचंद पर और बातें होती रहीं सिर्फ जदीद अफसानों पर. उस सेमिनार में प्रेमचंद को ये कहकर बाई पास कर दिया गया कि वे एक क़िस्सागो थे.

अफसोस क्या, दुःख होता है. बंधु आपने मेरे भैया यहां एक बढ़िया बात उठा दी—किस्सागोई की. मैं यहां किस्सागोई का फन सही है या गलत है, इस पर बहस करने के बदले, ये सवाल पूछना चाहता हूं कि आप बड़े प्रगतिशील हैं, आप बिना किस्सा कहे, केवल मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक सूत्रों को कहानी में गढ़ करके क्या जन-समाज तक पहुंच जायेंगे, जैसे प्रेमचंद पहुंचे?

यही तो रोना है इनका. प्रगतिशीलता की सारी दावेदारी ये भले ही करें, पर जन-समाज तक ये पहुंच नहीं पा रहे हैं. दरअसल यहां तक पहुंचने के लिए किस्सागोई एक कारगर नुस्खा था, जिसे प्रेमचंद ने अपनाया था. फिर प्रेमचंद की किस्सागोई तो किस्सागोई ही नहीं लगती. वह फेब्रिकेशन से अलग अत्यंत सहज और जीवंत लगती है.

दरअसल बात ये है गुप्तजी, कि कहानी तो कही जाती है, ये एक मोटी चीज है, चाहे बड़े हों या बच्चे, कहानी का मूल तत्व है—कथारस, जो सबको बांधता है. एक था राजा एक थी रानी से लेकर आज तक की कहानी जहां अपनी ओर खींचती है, वह उसका कथारस ही है. रही किस्साकोई की बात तो किस्सागोई के तो कई फार्म्स हैं—फारसी किस्सागोई, हिंदुस्तानी किस्सागोई वगैरह, पर जिस तरह से प्रेमचंद ने कथारस की सृष्टि की है, उसे यह कहकर बाईपास कर जाना कि वे किस्सागो थे, बेवकूफी के सिवा और क्या है? मैं कहता हूं, गोर्की किस्सागो नहीं था, यामा द पिट का एलेक्जेंडर किस्सागो नहीं है. पूरे समाज का एक चित्र नहीं देते वे सब? फिर....

सवाल ये है नागरजी कि आखिर लेखक या रचनाकार का उस किस्सागोई के पीछे मकसद क्या है? अगर मकसद बड़ा है तो हमें यह देखना चाहिए कि उसकी दृष्टि कहां पर है? उसका उद्देश्य क्या है? वह आखिर देना क्या चाहता है, कहना क्या चाहता है?

भैया मैं तो ये मानता हूं कि अगर कहानी है तो उसमें कहानीपन तो होगा ही, उपन्यास है तो उसमें उपन्यासपन तो होगा ही. इस वैशिष्ट्य के साथ लिखते हुए प्रेमचंद ने बौद्धिक रूप से समाज को आगे बढ़ाया, हमारा लीडर बना, हमको एक नयी दृष्टि दी. उस कलम के सिपाही ने कितनी मुश्किलें झेलकर, कितनी जद्दोजहद से, कितनी मशक्कत से, लड़ करके, अपने अंदर से वो तरीका निकाला, जिससे कि अपनी बौद्धिकता को हम आप सब पर फैला दिया.

कितनी सहजता से फैलाया, मजे की बात तो ये है...

जी हां, पर क्या इस पूरी शताब्दी में इस बात को लेकर चर्चा हुई. उल्टे किस्सागो....रट-रटकर प्रेमचंद को इग्नोर करने की कोशिश की. मेरा मन इन बातों से कितना दुःखी होता है, क्या कहूं, इन विद्वानों के किस्सागो शब्द पर.

किस्सागोई बेमानी तब है जब वह यथार्थ से काफी अंशों में दूर हो.

देखिए, किस्सागोई में यथार्थ तो मिलेगा ही. मेरा मतलब तिलस्मी अनुपात से नहीं, यथार्थवादी अनुपात से है और प्रेमचंद इस मायने में कितने सधे हुए रूप में यथार्थवादी हैं.

किस्सागोई को मैं दूसरी तरह से डिसकस करना चाहता हूं. यह कहानी कहने की एक पुरानी शैली है, पुरानी परिपाटी है, जिनके नमूने अब भी मेरे पास हैं, उनके जरिये ये मैं अब भी आपको बता सकता हूं कि कहानी कैसे-कैसे कही गयी, कही जाती है. तो ये बात कहानी कहने की थी, जो छापे में कहानी के आने के पहले की किस्सागो शैली की कहानी थी. छापे में आने के बाद तो वो किस्सागोई चली गयी.

फिर तो किस्सा-बयानी हो गयी.

बिल्कुल यही बात. अब किस्सागोई नहीं, किस्सा-बयानी है. तो ये किस्सागोई से किस्सा-बयानी की मंजिल हमने कैसे तय की, यहां तक हम कैसे आये, इस पर डिसकसन हुआ नहीं? लेकिन इस फर्क को जाने बिना भी बड़े-बड़े विद्वानों को कहते हुए जब सुनता हूं कि प्रेमचंद किस्सागो थे...किस्सागो थे तो जी में आता है, मुंह पर थप्पड़ मारूं. किस्सागो कहनेवाले तो बड़े विद्वान हैं, उनके मुंह पर तो मार सकते नहीं, तो अपने ही मुंह पर मार लूं. क्या कहूं आपसे! मन बड़ा दुखी हो जाता है यह देखकर कि हमने अपने साहित्यिक पुरखों को ठाकुरजी बनाकर दो फूल चढ़ाया, ओठ हिलाया, पानी चढ़ाया, चंदन-अक्षत चढ़ाया और हो गयी पूजा. ये भी कोई बात हुई!

आप सही कह रहे हैं नागरजी, अभी सही मूल्यांकन जिसको कहते हैं वो कहां हुआ?

हां, वह मूल्यांकन जिससे हम आगे बढ़ते....

जिससे हम सीख लेते, विरासत के रूप में कुबूल करते, वो कहां हुआ? उलटे हुआ ये कि हम प्रासंगिकता का सवाल उठाते हैं, उस पर विरासत का सवाल नहीं उठाते कि उनसे हमें हासिल क्या हुआ? हमें क्या और

■ कहानी का मूल तत्व है कथारस : नागर जी

■ कमल गुप्त और नागर जी : अंतरंग बातें...

उन्होंने दिया?

क्या बात वही है. दरअसल बात ये है न भैया कि प्रेमचंद तो हमारे लिए खिलौना हैं. हम बड़े हो गये हैं और उस खिलौने से खेल सकते हैं. उस कठपुतली को नचा सकते हैं, सीधी बात है. आप देखिए, हमारा अहम कितना विकृत है और हम प्रेमचंद जयंती मनाते हैं!

हम तो इसको इस रूप में लेते हैं नागरजी कि उस बरगद के नीचे खड़े होने पर जब कुछ लोगों को अपने बौनेपन का एहसास हुआ तो वे इसे ही गया-बीता कहने लगे.

सही कहा भैया आपने, मूल्यांकन हुआ कहां. मूल्यांकन तो तब होता,जब एक व्यक्तिविशेष के रूप में एक लेखक ने जो मूल्य स्थापित किये हैं, उन पर हम विचार करते और दूसरा पक्ष ये है कि उन मूल्यों का हम प्रचार करते. तो भैया मेरे, क्या हमने प्रेमचंद को लेकर ये दोनों बातें कीं? मैंने तो यही देखा इधर पिछले दो वर्षों में, लेखकों की सभाएं तो हुई और वही बारह-पंद्रह-बीस लेखक हैं, जो आपको बिहार में भी बोलते मिलेंगे, मध्यप्रदेश में भी बोलते मिलेंगे, महाराष्ट्र में भी बोलते मिलेंगे.

पर जिसको लेकर लिखा, जिसके लिए लिखा, जिसके दु:ख की गाथा उन्होंने गायी, उन तक क्या हमने उनको पहुंचाया?

क्या बात कही है भैया तुमने.(बेहद उल्लास से नागरजी कह उठते हैं). हम अपने को ही लें, आखिर आज हम प्रेमचंद से क्या फायदा उठाते हैं. प्रेमचंद हों, भारतेंदु हों, हम कहीं उनसे फायदा उठाते हैं? अरे भाई, मैं तो ये भी कहता हूं कि जितना फायदा उठाने लायक है, उतना उठाओ, बाकी सब छोड़ो. काम लायक रखो, जो कूड़ा हो, फेंक दो. मैं तो ये भी कहता हूं कि प्रेमचंद ने सब बढ़िया ही थोड़े लिखा....

फिर भी एक बात तो दी ही और वो है अपनी विरासत...अपनी निजी पहचान, नयी शुरुआत!

हां वो तो है, पर दुनिया का कोई भी लेखक हो, सब बढ़िया ही तो नहीं देता.

वैसे ये जिसे आप बढ़िया मानते हैं, वो क्या चीज है?

ये आप मेरी तरफ से रिकार्ड पर लीजिए, हमारी तरफ से—बढ़िया मेरी दृष्टि में वो है,जो हमारे भीतर रस का विकास करने के साथ चेतना का विकास करता है, जो कथ्य हमारे मन और भाव तथा बुद्धि दोनों को छू ले, वो बात बढ़िया है, वो लेखन बढ़िया है और वही आगे बढ़ाती है.

वही जिंदा भी रहती है.

हां, वही दृष्टि भी देती है, वही आस्था भी देती है.

वही प्रेरक भी होती है.

हां,अब आप रस शब्द को लें. रस शब्द पुराना हो सकता है. ऐसे बहुत से नये बौद्धिक समीक्षक भी हैं, जो रस को नहीं मानते, लेकिन रस, आप समझ लीजिए मनोरंजन, यद्यपि इस शब्द ने लेकर मुझे गालियां खिलवा दीं, क्योंकि प्रेमचंद के लिए भी मनोरंजन शब्द का इस्तेमाल कर दिया था. तो मेरे कहने का मतलब ये है कि मैं और आप जो बात करते हैं और उस समय जो तार बनता चला जाता है वो....

वो तो रस ही है.

बड़ी लंबी उमर हो, भई आप भी जब यही कहते हो, प्रोफेसर आदमी होकर तो मुझे खुशी है.

देखिए,दरअसल बात ये है कि आपको इतना करीब से मैंने जाना है कि आप जो कहना चाहते हैं, आपकी संवेदनशीलता से परिचित होने के कारण, मैं उसे पहले से ही जान लेता हूं और यही तरीका है, इसी तरह से प्रेमचंद को जानना, प्रेमचंद के साथ होना, प्रेमचंद के पात्रों के साथ-साथ जीना, उनकी रचना की संवेदनशीलता के साथ-साथ होना हो सकता है. यही है, प्रेम का रास्ता, बड़ा संकरा होता है ये रास्ता पर प्रेमचंद को जानने के लिये तो इसी रास्ते चलना होगा.

क्या बात है! ऐसा कहके तबीयत खुश कर दी आपने.

इस तरह से इस रास्ते पर चलने की तमीज तो आयी नहीं और प्रेमचंद को गया-बीता मानने लगे, अप्रासंगिक बताने लगे.

हां, नकारा...पूरी तरह से नकारा, तो भाई हम तो बेपढ़े-लिखे आदमी ठहरे, पर तुम सब लोग तो पढ़े-लिखे रहे, फिर कैसी बात करते हो? अरे भई, मुझे तो बहुत कुछ बढ़िया मिला प्रेमचंद में,जो हमें आगे बढ़ाता है, एकदम से आगे...

जो शाश्वत, मानवतावादी मूल्यों को लेकर आगे चले और उसे कायम रखे. विचार और चिंतन से साहित्य को संवार दिया.

हां, ऐसे बहुतेरे प्रेरक वाक्य हैं,जो प्रेमचंद के साहित्य से कई मिल जायेंगे....कई...कई मिल जायेंगे.

चिंतन के दार्शनिक वाक्य लगते हैं.

बिलकुल सही बात है. स्टालिन का एक वाक्य मुझे बिलकुल जम गया—विल पैशनेटली एंड यू एचीव.

वाह, क्या बात कही है! क्या बात है!

अब आप सोचो, उसने एक बात कही और मुझे टक् से लग गयी, मन में. तो ये बातें रास्ता भी दिखाती हैं मन को.

इसीलिए तो प्रेमचंद ने कहा भी था कि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, दीपक भी है.

बिल्लकुल्ल यही..मेरे भैया आप लंबी उमर जीवो! ये बात पिछले दो वर्ष में इन तमाम समारोहों में सुनने को नहीं मिली. हमको इस प्रेमचंद की तलाश थी (जोर देकर नागर जी कहते हैं) और इसी प्रेमचंद के साथ हम तुम्हारे साथ मिलना चाहते थे. हमारे अंदर वही वह जिंदा जावेद है.

बिल्कुल है नागर जी, वह एक रोशनी की तरह हैं.

हां, बिल्कुल है. मैंने इसी रूप में प्रेमचंद को देखा. भारतेंदु को तो मैंने देखा भी नहीं, पर भारतेंदु अपनी राइटिंग से आज भी मेरे अंदर जीवित हैं. महावीर प्रसाद द्विवेदी मन को बांध जाते हैं, बालमुकुंद गुप्त मन को छू जाता है, निकलता नहीं. तो उनमें ऐसा बहुत कुछ है,जिसे हम जज्ब करते हैं और जज्ब करके कुछ ऐसे सूत्र होते हैं, जो मन में टक् से लग जाते हैं और निकाले नहीं निकलते.

और प्रेमचंद में ऐसे सूत्र-वाक्य, मंत्र-वाक्य बहुतेरे मिलेंगे, जीवन के सूत्र.

वो भैया मिलेंगे ही,इसलिए क्योंकि वो कलेजे से लिखता था. एक होकर लिखता था. तुमसे, तुम्हारे दु:ख-दर्द से एक होकर लिखता था, दूसरा होकर नहीं. वह कफनकार बाप और बेटा दोनों में है, वो पूस की रात का मचिया पर सोता हुआ किसान अपने कुत्ते से बात करता हुआ वो कोई दूसरा नहीं, प्रेमचंद है, क्योंकि जब तक वह उसमें एकरस न हो जाये, वो प्रेमचंद कहां? होरी और प्रेमचंद एक हैं. जब तक दोनों एक न हो जायें, वह लेखक क्या! ये तो परकाया प्रवेश का मामला है, होता है, मेरे भैया!

नाटक में भी तो यही स्थिति है.

हां, वहां भी. चाहे नाटक हो या उपन्यास, अभिनेता हो या उपन्यासकार, पात्र के साथ एकाकार होना जरूरी है.

इसे दरअसल कहते हैं नागरजी,पात्र के साथ जीना, पात्र बन जाना—

हां SSS...S यही बात! इसके बिना काम नहीं चलता. इसके बिना तो सब किया कराया बेकार! जब हम कलेजा निकाल के तुमको देंगे तो तुम पर आशिक नहीं होंगे. मुझे तो इस मायने में प्रेमचंद से बड़ा आशिक नजर नहीं आता.

बहुत खूब नागर जी! क्या उम्दा और पुरअसर बात आपने कही है. दिस इज कल्ड टु लिव एंड डाई विद द रोल एंड प्रेमचंद डिड सो ब्यूटीफुली. इसी को कहते हैं

पात्र की सांस के साथ सांस मिलाना और प्रेमचंद ने इसे बखूबी किया है.

खूब कही मेरे भाई. खूब कही. तो मेरा कहना है कि प्रेमचंद को आपने कहां देखा? कितना आशिक था अपने समाज का? कितना प्यार करता था उस समाज को,जिसके लिए तिल-तिल भर के लिखा? उधर तो तुम्हें देखने की फुर्सत नहीं और गालियां हमें देते हो!

गालियां आपको नहीं, आपकी इन बातों की वजह से उलटकर उन्हें लगेंगी इस कदर कि वे हजरत अपना गाल सहलाते नजर आयेंगे.

क्या खूब कही है.

फिर तो एक मिला-जुला जोर का ठहाका उस मेहराबदार पड़ाव में गूंजता है, देर तक गूंजता रहता है. थोड़ी देर के अंतराल के बाद मैं पुन: पूछता हूं.

अच्छा नागर जी, प्रेमचंद के लेखन और व्यक्तित्व से आप इस कदर प्रभावित हैं तो कुछ खास वैसी बातें बतायेंगे, जिन्होंने आपको प्रभावित किया है.

प्रेमचंद से हमें जो भी चीजें मिली हैं, उसमें सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात ये है कि प्रेमचंद ने हमें स्वाभिमान से लिखना लिखाया है. ही वाज सो प्राम्ट इन हिज राइटिंग (वे अपने लेखन में इतने अधिक अध्यवसायी थे) कि क्या कहा जाये.

हां, लेखन को वे पूजा मानकर लिखते थे. कहा जाता है,एक बार तबीयत खराब थी, फिर भी रात देर गये तक शिवरानीजी के बार-बार टोकने पर भी लालटेन जलाकर लिखते रहे. अंत में जब शिवरानीजी ने उन्हें डेस्क पर से उठने को कहा तो प्रेमचंद बोले—मुझे काम करने दो वर्ना मैं अपने उस मालिक को क्या जवाब दूंगा,जिसने यह काम मुझे सौंपा है. लिखे बगैर चैन नहीं था उन्हें.

इसीलिए मैं कह रहा हूं कि लेखन प्रेमचंद के लिए एक साधना थी, शौक या दिल बहलाव नहीं. प्रेमचंद के लिए लेखन बड़ी चीज थी, कोई नौकरी नहीं. वह जीविका का बहाना नहीं, अपितु माध्यम भी था, उनके लिए. इसीलिए कहता हूं कि वे अध्यवसायी लेखक थे.

अध्यवसायी लेखक मूड का गुलाम तो नहीं ही हो सकता?

बिलकुल. प्रेमचंद कभी भी मूड के गुलाम नहीं हुए. मेरी जिंदगी में प्रेमचंद की यह दूसरी चीज आयी है. निराला भी मूड के गुलाम नहीं थे. मैंने खुद देखा है, उनके भक्त उनकी सेवा कर रहे होते थे, सर पर तेल दाबते रहते और यदि उसी समय कहीं निरालाजी को कोई आंतरिक आवेग से कुछ विचार, कविता की पंक्ति कौंधती थी तो वे सभी को तेजी से झटककर कागज कलम लेकर उस पर अपनी बात उतार देते थे. दरअसल संगीत की तरह का रियाज होना चाहिए. निरालाजी का यह पेट शब्द था-रियाज. वे लिखते समय अक्सर कागज के गोले बनाते रहते थे, जब तक कि कोई बात मुकम्मल तौर पर, निखरकर, पूरी तरह उभरकर सामने न आ जाये. इस सारी प्रक्रिया को वे रियाज मानते थे.

रियाजदार लेखकों में आप और किसको शामिल करना चाहेंगे?

अब यूं कहना तो बड़ा मुश्किल है,क्योंकि कुछ नामों के छूट जाने का डर है, पर जैसे प्रेमचंद, बंगला साहित्य के शरद् बाबू, रवि बाबू तो होरेंशश राइटर थे. 14, 15 घंटे लिखते ही चले जाते थे, जब लिखने बैठते.

आपको तो पान और भंग का नशा है. क्या इन लोगों में भी कुछ ऐसी बात थी कि छुटती नहीं काफिर मुंह से लगी हुई?

मेरे पान और भंग का नशा तो भैया आपके शहर बनारस का ही दिया हुआ है. विनोद शंकर व्यास जम कर भांग खाने वाले थे. मेरी तो भैया हर हाल में आखिरी वक्त तक भी यही इच्छा होगी कि मरूं तो मेरे भीतर भांग की गोली करवट बदलती रहे.

क्या बात कही है नागरजी आपने भी! आपकी भी मिसाल नहीं. वस्तुत: आपका नशा आपकी शान है.

नशा और शान. शान और नशा.ये दोनों शब्द भी कमाल के हैं. खूब इस्तेमाल किया है गुप्तजी आपने. तो भैया वाकई ठीक कहा है आपने, मेरा नशा मेरी शान है.

गालिब का भी तो यही हाल था. वो क्या कहा भी तो है—

कर्ज की पीते थे मय, और ये समझते थे,
रंग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन.

साहित्य, फिल्म और सेक्स

□ प्रेमचंद

'सेक्स अपील को हम हौवा नहीं समझते. दुनिया उसी धुरी पर कायम है, लेकिन शराब खाने में बैठकर तो कोई दूध नहीं पीता. सेक्स अपील की निंदा तब होती है, जब वह विकृत रूप धारण कर लेता है. सुई कपड़े में चुभती है तो हमारा तन ढंकती है, लेकिन देह में चुभे तो उसे जख्मी कर देगी. साहित्य में भी जब यह अपील सीमा से आगे बढ़ जाती है तो उसे दूषित कर देती है. इसी कारण हिंदी प्राचीन कविता का बहुत बड़ा भाग साहित्य का कलंक बन गया है. सिनेमा में वह अपील और भी भयंकर हो गयी है, जो संयम और निग्रह का उपहास है.' □

('साहित्य का उद्देश्य' में संकलित लेख 'फिल्म और साहित्य' से)

हां क्या कमाल का आलम था. कितना आला आदमी था. शेर रचने में भी कमाल के आदमी वे थे. नशे के आलम में जब शेर बनते जाते थे तो अपने इजारबंद के सिरे पर गांठें देते जाते थे और सुबह गांठें गिनकर शेरों को याद कर पूरा कर लेते थे.

वही प्रेमचंद के मेमोरी एडस वाली बात हुई. अच्छा प्रेमचंद भी कोई नशा करते थे?

नशा नहीं करते थे और न ही उनकी आदत थी. हां शौकिया कभी-कभी साथ—संगत या बिरादरी के संग 'देशी' उतार ली तो बात अलग है. वैसे लिखना ही उनका नशा था. अलबत्ता शरदचंद्र अफीम का जमकर नशा करते थे. चांदी की डिबिया से अफीम को, छुरी से तराशकर निकालते और मुंह में रख लेते. प्रेमचंद में ऐसी कोई बात न थी. हां,बीड़ी का शौक जमकर करते थे. एक बार का एक दिलचस्प किस्सा नाटककार भुनेश्वर ने मुझे बताया और कहा कि एक बीड़ी के सिरे पर चुटपुटिया पटाखे रखकर उन्होंने प्रेमचंद को पीने के लिए उसे दे दिया. प्रेमचंद उसे अंगुली में फंसाकर सलाई की लौ में दगाने लगे. पटाखे की आवाज से वह महान आदमी समझ तो सब गया,पर क्रोधित नहीं हुआ. अलबत्ता लिखने का उस वक्त उनका मूड जाता रहा.

पर ये तो निहायत बेहूदा मजाक था.

बेशक, भयानक मजाक था, बेहूदा भी, पर कितना ग्रेट आदमी था कि वैसे शांत का शांत पड़ा रहा, कोई दूसरा होता तो फट पड़ता. हां,तो मैं कह रहा था कि उन्हें बीड़ी का शौक था. हुक्का जमकर पीते थे. बिसवा के प्रसिद्ध तम्बाकू का जिक्र भी उन्होंने किया है. हुक्का तो श्यामसुंदर दास भी जमकर लेते थे. शुक्लजी भी लेते थे, पर वे भांग के भी ज्यादा शौकीन थे.

भांग की वह शुक्लजी, उग्रजी और रुद्रजी की बनारसी परंपरा आप तबीयत से निभाये चल रहे हैं.

अब तो निभ ही गयी. उसके बगैर तो लगता है, जैसे धड़कन ठहर गयी है.

अच्छा नागरजी, एक बात बताएं, आपकी धड़कनों में कितना हिस्सा लखनऊ है और कितना बनारस.

सही-सही हिसाब भैया गुप्तजी देना तो बड़ा मुश्किल है, क्योंकि आपने बड़ा नाजुक सवाल कर दिया है. बस, यूं समझ लीजिए कि मैं वो लखनवी हूं, जिसमें बनारसी मिजाज है.

कहने की देर थी कि दोनों ओर से मिली-जुली ठहाकेदार हंसी नागरजी के नवाबी अंदाज की मेहराबदार बैठक में फिर-फिर गूंजती है और देर रात तक गूंजती रहती है और अंत में पान की गिलौरियों की पर्तों में बंद हो जाती है. आर्थराइटिस की गिरफ्त में पड़े हुए तकियों के सहारे लेटे हुए नागरजी मुझे विदा देने के लिए उठने का यत्न करते हैं. मैं उन्हें लेटे हाल में ही उनकी मुस्कराहटों से आच्छादित अपना तन-मन लिये उनसे विदा लेता हूं. □

● प्रेमचंद की कहानियां : एक

आत्माराम

वेदी-ग्राम में महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था. वह अपने सायबान में प्रातः से संध्या तक अंगीठी के सामने बैठा हुआ खट-खट किया करता था. यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण से बंद हो जाती तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गयी. वह नित्य-प्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजड़ा लिये कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था. उस धुंधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुंह, झुकी हुई कमर देखकर किसी परिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था. ज्यों ही लोगों के कानों में आवाज आती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता', लोग समझ जाते कि भोर हो गयी.

महादेव का पारिवारिक जीवन सुखमय न था. उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएं थीं, दर्जनों नाती-पोते थे, लेकिन उसके बोझ को हलका करनेवाला कोई न था. लड़के कहते, 'जब तक दादा जीते हैं, हम जीवन का आनंद भोग लें; फिर तो यह ढोल गले पड़ेगी ही.' बेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता. भोजन के समय उसके घर में साम्यवाद का ऐसा गगनभेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता, और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता. उसका व्यावसायिक जीवन और भी अशांतिकारक था. यद्यपि वह अपने काम में निपुण था; उसकी खटाई औरों से कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियाएं कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आये-दिन शक्की और धैर्यशून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचलित गांभीर्य से सिर झुकाये सब-कुछ सुना करता था. ज्यों ही यह कलह शांत होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'. इस मंत्र को जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शांति प्राप्त हो जाती.

आत्माराम के संबंध में विभिन्न किंवदंतियां प्रचलित हैं. कोई कहता है, वह रत्नजटित पिंजड़ा स्वर्ग को चला गया, कोई कहता, वह 'सत्त गुरुदत्त' कहता हुआ अंतर्धान हो गया...ठीक ऐसे ही तमाम जनश्रुतियां महादेव के विषय में भी प्रचलित हैं. कैसे होते हैं वे चरित्र जो स्वयं न रहते हुए भी समय और समाज पर अपनी अमिट यादगार छोड़ जाते हैं...! कथा सम्राट की एक अविस्मरणीय कहानी—

एक दिन संयोगवश किसी लड़के ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया. तोता उड़ गया. महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजड़े की ओर देखा तो उसका कलेजा सन्न-से हो गया. तोता कहां गया! उसने फिर पिंजड़े को देखा, तोता गायब था. महादेव घबड़ाकर उठा और इधर-उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा. उसे संसार में कोई वस्तु अगर प्यारी थी, तो वह यही तोता. लड़के-बालों, नाती-पोतों से उसका जी भर गया था. लड़कों की चुलबुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था. बेटों से उसे प्रेम न था; इसलिए नहीं कि वे निकम्मे थे; बल्कि इसलिए कि उनके कारण वह अपने आनंदमयी कुल्हड़ों की नियमित संख्या से वंचित रह जाता था. पड़ोसियों से उसे चिढ़ थी, इसलिए कि वे अंगीठी से आग निकाल ले जाते थे. इन समस्त विघ्न-बाधाओं से उसके लिए कोई पनाह थी, तो वह यही तोता था. इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था. वह अब उस अवस्था में था, जब मनुष्य को शांति भोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती.

तोता एक खपरैल पर बैठा था. महादेव ने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा, 'आ आ सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता.' लेकिन गांव और घर के लड़के एकत्र होकर चिल्लाने और तालियां बजाने लगे. ऊपर से कौओं ने कांव-कांव की रट लगायी. तोता उड़ा और गांव से बाहर निकलकर एक पेड़ पर जा बैठा. महादेव खाली पिंजड़ा लिये उसके पीछे दौड़ा, सो दौड़ा. लोगों को उसकी द्रुतगामिता पर अचंभा हो रहा था. मोह की इससे सुंदर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती.

दोपहर हो गयी थी. किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे. उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला. महादेव को चिढ़ाने में सभी को मजा आता था. किसी ने कंकड़ फेंके, किसी ने तालियां बजायीं. तोता फिर उड़ा और वहां से दूर आम के बाग में एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा. महादेव फिर खाली पिंजड़ा लिये मेंढ़क की भांति उचकता चला. बाग में पहुंचा तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी; सिर चक्कर खा रहा था. जब जरा सावधान हुआ तो फिर पिंजड़ा उठाकर कहने लगा—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता.' तोता फुनगी से उतरकर नीचे की एक डाल पर आ बैठा; किंतु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था. महादेव ने समझा, डर रहा है. वह पिंजड़े को छोड़कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया. तोते ने चारों ओर गौर से देखा, निश्शंक हो गया, उतरा और आकर पिंजड़े के ऊपर बैठ गया. महादेव का हृदय उलझने लगा. 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मंत्र जपता हुआ धीरे-धीरे तोते के सामने आया और लपका कि तोते को पकड़ ले; किंतु तोता हाथ न आया, फिर पेड़ पर जा बैठा.

शाम तक यही हाल रहा. तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर. कभी पिंजड़े पर आ बैठता, कभी पिंजड़े के द्वार पर बैठ अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता और फिर उड़ जाता. बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमान माया. यहां कि शाम हो गयी. माया और मोह का यह संग्राम अंधकार में विलीन हो गया.

रात हो गयी. चारों ओर निबिड़ अंधकार छा गया. तोता न जाने पत्तों में कहां छिपा बैठा था. महादेव जानता था कि रात को तोता कहीं उड़कर नहीं जा सकता, और न पिंजड़े ही में आ सकता है, फिर भी वह उस जगह से हिलने का नाम न लेता था. आज उसने दिन भर कुछ नहीं खाया. रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की एक बूंद भी उसके कंठ में न गयी, लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास. तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था. वह दिन-रात काम करता था; इसलिए कि यह उसकी अंतः प्रेरणा थी; जीवन के और काम इसलिए करता था कि आदत थी. इन कामों में उसे अपनी सजीवता का लेश-मात्र भी ज्ञान न होता था. तोता ही वह वस्तु था, जो उसे चेतना की याद दिलाता था. उसका हाथ से जाना जीव का देह-त्याग करना था.

महादेव दिन-भर का भूखा-प्यासा, थका-मांदा, रह-रहकर झपकियां ले लेता था; किंतु एक क्षण में फिर चौंककर आंखें खोल देता और उस विस्तृत अंधकार में उसकी आवाज सुनाई देती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता.'

आधी रात गुजर गयी थी. सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका. देखा, एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक धुंधला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुए आपस में कुछ बातें कर रहे हैं. वे सब चिलम पी रहे थे. तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया. उच्च स्वर में बोला—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला गया; किंतु जिस प्रकार बंदूक की आवाज सुनते ही हिरन भाग जाते हैं, उसी प्रकार उसे आते देख सब के सब उठ कर भागे. कोई इधर गया. कोई उधर. महादेव चिल्लाने

लगा–'ठहरो-ठहरो' एकाएक उसे ध्यान आ गया, ये सब चोर हैं. वह जोर से चिल्ला उठा–'चोर-चोर, पकड़ो-पकड़ो!' चोरों ने पीछे फिरकर न देखा.

महादेव दीपक के पास गया तो उसे एक कलसा रखा हुआ मिला, जो मोर्चे से काला हो रहा था. महादेव का हृदय उछलने लगा. उसने कलसे में हाथ डाला तो मोहरें थीं. उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपक के उजाले में देखा. हां, मोहर थी. उसने तुरंत कलसा उठा लिया, दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिपकर बैठ रहा. साह से चोर बन गया.

उसे फिर शंका हुई, ऐसा न हो, चोर लौट आवें, और मुझे अकेला देखकर मोहरें छीन लें. उसने कुछ मोहरें कमर से बांधी, फिर एक सूखी लकड़ी से जमीन की मिट्टी हटाकर गड्ढे बनाये, उन्हें मोहरों से भरकर मिट्टी से ढंक दिया.

महादेव के अंतर्नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत् था, चिंताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण. यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने का भय था, पर अभिलाषाओं से अपना काम शुरू कर दिया. एक पक्का मकान बना गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गयी. निज संबंधियों से फिर नाता जुड़ गया. विलास की सामग्रियां एकत्रित हो गयीं. तब तीर्थयात्रा करने चले, और वहां से लौटकर बड़े समारोह से यज्ञ, ब्रह्मभोज हुआ. इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआं बन गया, एक बाग भी लग गया और वह नित्यप्रति कथा-पुराण सुनने लगा. साधु-संतों का आदर-सत्कार होने लगा.

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायें तो मैं भागूंगा क्योंकर? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया. और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया. जान पड़ता था, उसके पैरों में पर लग गये हैं. चिंता शांत हो गयी. इन्हीं कल्पनाओं में रात व्यतीत हो गयी. उषा का आगमन हुआ, हवा जगी, चिड़ियां गाने लगीं. सहसा महादेव के कानों में आवाज आयी–

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा.'

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था. दिन में सहस्त्रों ही बार ये शब्द उसके मुंह से निकलते थे, पर उनका धार्मिक भाव कभी उसके अंतःकरण को स्पर्श न करता था. जैसे किसी बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुंह से यह बोल निकलता था. निरर्थक और प्रभाव-शून्य. तब उसका हृदयरूपी वृक्ष पत्र-पल्लव विहीन था. यह निर्मल वायु उसे गुंजरित न

कर सकती थी, पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएं निकल आयी थीं. इस वायु-प्रवाह से झूम उठा, गुंजित हो गया.

अरुणोदय का समय था. प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश में डूबी हुई थी. उसी समय तोता पैरों को जोड़े हुए ऊंची डाल से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे और आकर पिंजड़े में बैठ गया. महादेव प्रफुल्लित होकर दौड़ा और पिंजड़े को उठाकर बोला, "आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सफल कर दिया. अब तुम्हें चांदी के पिंजड़े में रखूंगा और सोने में मढ़ दूंगा!" उसके रोम-रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी. प्रभु, तुम कितने दयावान् हो! यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ जैसा पापी, पतित प्राणी कब इस कृपा के योग्य था! इन पवित्र भावों से उसकी आत्मा विह्वल हो गयी. वह अनुरक्त होकर कहा उठा.

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्तलागा.'

उसने एक हाथ में पिंजड़ा लटकाया, बगल में कलसा दबाया और घर चला.

महादेव घर पहुंचा, तो अभी कुछ अंधेरा था. रास्ते में एक कुत्ते के सिवा और किसी से भेंट न हुई, और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं होता. उसने कलसे को एक नांद में छिपा दिया, और उसे कोयले से अच्छी तरह ढककर अपनी कोठरी में रख आया. जब दिन निकल आया तो वह सीधे पुरोहित के घर पहुंचा. पुरोहित पूजा पर बैठे सोच रहे थे–कल ही मुकद्दमे की पेशी है और अभी तक हाथ में कौड़ी भी नहीं–यजमानों में कोई सांस भी नहीं लेता. इतने में महादेव ने पालागन की. पंडितजी ने मुंह फेर लिया. यह अमंगलमूर्ति कहां से आ पहुंची! मालूम नहीं, दाना भी मुअस्सर होगा या नहीं. रुष्ट होकर पूछा, "क्या है जी, क्या कहते हो. जानते नहीं, हम इस समय पूजा पर रहते हैं."

महादेव ने कहा, "महाराज, आज मेरे यहां सत्यनारायण की कथा है."

पुरोहितजी विस्मित हो गये. कानों विश्वास न हुआ. महादेव के घर कथा होना उतनी की असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना. पूछा, "आज क्या है?"

सिनेमा, धन और साहित्यकार

■ प्रेमचंद

सिनेमा जिनके हाथ में है, उन्हें आप कुपात्र कहें, मैं तो उन्हें उसी तरह व्यापारी समझता हूं, जैसा कोई दूसरा व्यापारी, और व्यापारी का काम जनरुचि का पथ-प्रदर्शन करना नहीं, धन कमाना है. वह वही चीज जनता के सामने रखता है, जिसमें उसे अधिक से अधिक धन मिले. एक फिल्म बनाने में पचास हजार से एक लाख तक बल्कि इससे भी ज्यादा खर्च हो जाते हैं. व्यापारी इतना बड़ा खतरा नहीं ले सकता. गरीब का दीवाला निकल जाये. साहित्यकार का मुख्य उद्देश्य धन नहीं होता, नाम चाहे हो. हमारे ख्याल में साहित्य का मुख्य उद्देश्य जीवन को बल और स्वास्थ्य प्रदान करना है. अन्य सभी उद्देश्य इसके नीचे आ जाते हैं. हजारों साहित्यकार केवल इसी भावना से अपना जीवन तक कुर्बान कर देते हैं. उन्हें धेला भी इससे नहीं मिलता. मगर ऐसा शायद ही कोई प्रोड्यूसर अवतरित हुआ हो, और शायद ही हो, जिसने इस ऊंची भावना से फिल्म बनाया हो. □

('साहित्य का उद्देश्य')

महादेव बोला, "कुछ नहीं. ऐसी इच्छा हुई कि आज भगवान् की कथा सुन लूं."

प्रभात ही से तैयारी होने लगी. वेदी के निकटवर्ती गांवों में सुपारी फिरी. कथा के उपरांत भोज का नेवता था. जो सुनता, आश्चर्य करता. आज रेत में दूब कैसे जमी?

संध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, और पंडित अपने सिंहासन पर विराजमान हुए, तो महादेव खड़ा होकर उच्च स्वर में बोला, "भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गयी. मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दी, कितने खरे को खोटा किया, पर अब भगवान ने मुझ पर दया की है, वह मेरे मुंह की कालिख को मिटाना चाहते हैं. मैं आप सब भाइयों से ललकारकर कहता हूं कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ निकलता हो, जिसकी जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक-एक कौड़ी चुका ले. अगर कोई यहां न आ सका हो तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिए, कल से एक महीने तक, जब भी चाहे, आये और हिसाब चुकता कर ले. गवाही-साखी का काम नहीं.

सब लोग सन्नाटे में आ गये. कोई मार्मिक भाव से सिर हिलाकर बोला, "हम कहते न थे." किसी ने अविश्वास से कहा, "क्या खाकर भरेगा, हजारों का टोटल हो जायेगा."

एक ठाकुर ने ठिठोली की, "और जो लोग सुरधाम चले गये."

महादेव ने उत्तर दिया, "उनके घरवाले तो होंगे!"

किंतु इस समय लोगों को वसूली की इच्छा न थी, जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन कहां से मिल गया. किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ. देहात के आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें. फिर प्रायः लोगों को यदि भी न था कि उन्हें महादेव से क्या पाना है, और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक हो जाने का भय उनका मुंह बंद किये हुए था. सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हें वशीभूत कर लिया था.

अचानक पुरोहितजी बोले, "तुम्हें याद है, मैंने एक कंठा बनाने के के लिए सोना दिया था. तुमने कई माशे तोले में उड़ा दिये थे."

महादेव, "हां, याद है. आपका कितना नुकसान हुआ होगा?"

पुरोहित, "पचास रुपये से कम न होगा?"

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं और पुरोहितजी के सामने रख दीं.

पुरोहितजी की लोलुपता पर टीकाएं होने लगीं. यह बेईमानी है, बहुत हो तो दो-चार रुपये का नुकसान होगा. बेचारे से पचास रुपये ऐंठ लिये. नारायण का भी डर नहीं. बनने को पंडित, पर नियत ऐसी खराब! राम-राम!!

लोगों को महादेव पर एक श्रद्धा-सी हो गयी. एक घंटा बीत गया, पर उन सहस्त्रों मनुष्यों में से एक भी खड़ा न हुआ. तब महादेव ने फिर कहा, "मालूम होताा है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये हैं, इसलिए आज कथा होने दीजिए. मैं एक महीने तक आपकी राह देखूंगा. इसके पीछे तीर्थयात्रा करने चला जाऊंगा. आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें."

एक महीने तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा. रात को चोरों के भय से नींद न आती. अब वह कोई काम न करता. शराब का चसका भी छूटा. साधु-अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथायोग्य सत्कार करता. दूर-दूर उसका सुयश फैल गया. यहां तक कि महीना पूरा हो गया, और एक आदमी भी हिसाब लेने न आया. अब महादेव को ज्ञान हुआ कि संसार में कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार है. अब उसे मालूम हुआ कि संसार बुरों के लिए बुरा है और अच्छों के लिए अच्छा.

इस घटना को हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं. आप बेदीग्राम जाइए तो दूर ही से एक सुनहला कलस दिखाई देता है. वह ठाकुरद्वारे का कलस है. उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब है, जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं. उसकी मछलियां कोई नहीं पकड़ता; तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है. यही आत्माराम का स्मृतिचिह्न है. उसके संबंध में विभिन्न किवदंतियां प्रचलित हैं. कोई कहता है, वह रत्नजटित पिंजड़ा स्वर्ग को चला गया; कोई कहता, वह 'सत्त गुरुदत्त' कहता हुआ अंतर्धान हो गया, पर यथार्थ यह है कि पक्षी रूपी चंद्र को किसी बिल्ली-रूपी राहु ने ग्रस लिया. लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है.

'सत्त गुरुदत्त, शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा.'

महादेव के विषय में भी कितनी ही जनश्रुतियां हैं. उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई संन्यासियों के साथ हिमालय चला गया, और वहां से लौटकर न आया. उसका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया. □

तलाक को समाज पर लादना ठीक नहीं!

■ प्रेमचंद

सर्वहारा वर्ग में तलाक साधारण-सी बात है. केवल तथाकथित उच्च वर्ग में ही उसने गंभीर रूप धारण कर लिया है. अपने श्रेष्ठतम रूप में विवाह भी एक प्रकार का समझौता और समर्पण है. यदि कोई सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक दूसरे के लिए गुंजाइश रखनी चाहिए. वैसे ऐसे भी लोग हैं, जो अच्छी-से-अच्छी परिस्थिति में भी सुखी नहीं रह सकते. स्वछंद प्रेम और सभी प्रकार के संबंधों की छूट होने पर भी अमरीका में तलाक कम हो, ऐसी बात नहीं है. चाहे स्त्री हो या पुरुष, उनमें से एक को झुकने के लिए तैयार रहना चाहिए. मैं यह नहीं मानता कि दोषी केवल पुरुष ही हैं. बहुत से मामले ऐसे हैं, जहां स्त्रियां संकट पैदा करती हैं और काल्पनिक दुःखों की सृष्टि कर लेती हैं. जब इस बात का निश्चय ही नहीं है कि तलाक हमारी वैवाहिक बुराइयों को दूर करेगा, मैं इसे समाज पर लादना नहीं चाहता. हां, कुछ मामलों में तलाक आवश्यक हो जाता है, लेकिन, मेरी समझ में, झगड़े की जड़ एक-दूसरे की अपेक्षा को छोड़कर और कोई नहीं है. □

(डा. इन्द्रनाथ मदान को 26 दिसंबर, 1934 को लिखे पत्र से)

मेरी मां ने मुझे प्रेमचंद का भक्त बनाया

मुक्तिबोध

■ मुक्तिबोध

एक छाया-चित्र है. प्रेमचंद और प्रसाद दोनों खड़े हैं. प्रसाद गंभीर सस्मित. प्रेमचंद के होंठों पर अस्फुट हास्य. विभिन्न विचित्र प्रकृति के दो धुरंधर हिंदी कलाकारों के उस चित्र पर नजर ठहरने का एक और कारण भी है. प्रेमचंद का जूता कैनवैस का है, और वह अंगुलियों की ओर से फटा हुआ है. जूते की कैद से बाहर निकलकर अंगुलियां बड़े मजे में मैदान की हवा खा रही हैं. फोटो खिंचवाते वक्त प्रेमचंद अपने विन्यास से बेखबर हैं. उन्हें तो इस बात की खुशी है कि वे प्रसाद के साथ खड़े हैं, और फोटो निकलवा रहे हैं.

इस फोटो का मेरे जीवन में काफी महत्व रहा है. मैंने उसे अपनी मां को दिखाया था. प्रेमचंद की सूरत देख मेरी मां बहुत प्रसन्न मालूम हुई. वह प्रेमचंद को एक कहानीकार के रूप में बहुत-बहुत चाहती थी. उसकी दृष्टि से, यानी उसके जीवन में महत्व रखनेवाले, सिर्फ दो ही कादंबरीकार (उपन्यास-लेखक) हुए हैं–एक, हरिनारायण आप्टे, दूसरे प्रेमचंद. आप्टे की सर्वोच्च मराठी कृति, उनके लेखे, पण लक्षांत कोण घेतो है, जिसमें भारतीय परिवार में स्त्री के उत्पीड़न की करुण कथा कही गयी है. वह क्रांतिकारी करुणा है. उस करुणाने महाराष्ट्रीय परिवारों को समाज-सुधार की ओर अग्रसर कर दिया. मेरी मां जब प्रेमचंद की कृति पढ़ती, तो उसकी आंखों में बार-बार आंसू छलछलाते-से मालूम होते. और तब–उन दिनों मैं साहित्य का एक जड़मति विद्यार्थी, मात्र मैट्रिक का एक छोकरा था–प्रेमचंद की कहानियों का दर्द-भरा मर्म मां मुझे बताने बैठती. प्रेमचंद के पात्रों को देख, तदनुरूप चरित्र मां हमारे पहचानवालों में से खोज-खोजकर निकालती. इतना मुझे मालूम है कि मां ने प्रेमचंद का 'नमक का दरोगा' पिताजी में खोजकर निकाला था. प्रेमचंद पढ़ते वक्त मां को खूब हंसी भी आती, और तब वह मेरे मूड की परवाह किये बगैर मुझे प्रेमचंद-कथा-प्रसूत उसके हास्य का मर्म बताने की सफल-असफल चेष्टा करती.

प्रेमचंद के प्रति मेरी श्रद्धा व ममता को अमर करने का श्रेय मेरी मां को ही है.

मैं अपनी भावना में प्रेमचंद को मां से अलग नहीं कर सकता. मेरी मां सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध क्षोभ और विद्रोह से भरी हुई थी. यद्यपि वह आचरण में परंपरावादी थी, किंतु धन और वैभवजन्य संस्कृति के आधार पर ऊंच-नीच के भेद का तिरस्कार करती थी. वह स्वयं उत्पीड़ित थी और भावना द्वारा, स्वयं की जीवन-अनुभूति के द्वारा, मां स्वयं प्रेमचंद के पात्रों में अपनी गणना कर लिया करती थी. मेरी ताई (मां) अब बूढ़ी हो गयी है. उसने प्रस्तुत: भावना और संभावना के आधार पर मुझे प्रेमचंद पढ़ाया. इस बात को वह नहीं जानती है कि प्रेमचंद के पात्रों के मर्म का वर्णन-विवेचन करके वह अपने पुत्र के हृदय में किस बात का बीज बो रही है. पिताजी देवता हैं, मां मेरी गुरु है. सामाजिक दंभ, स्वांग, ऊंच-नीच की भावना, अन्याय और उत्पीड़न से कभी भी समझौता न करते हुए घृणा करना उसी ने मुझे सिखाया.

लेकिन मेरी प्यारी श्रद्धास्पदा मां यह कभी न जान सकी कि वह किशोर हृदय में किस भीषण क्रांति का बीज बो रही है, कि वह भावात्मक क्रांति अपने पुत्र को किस 'उचित-अनुचित' मार्ग पर ले जायेगी, कि वह किस प्रकार अवसरवादी दुनिया के गणित से पुत्र को वंचित रखकर, उसके परिस्थिति-सामंजस्य को असंभव बना देगी.

आज जब मैं इन बातों पर सोचता हूं तो लगता है कि मैं, मां और प्रेमचंद की केवल वेदना ही ग्रहण न कर, उनके चारित्रिक गुण भी सीखता, उनकी दृढ़ता, आत्म-संयम और अटलता को प्राप्त करता, आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति नष्ट कर देता; और उन्हीं के मनोजगत की विशेषताओं को आत्मसात करता, तो शायद, शायद मैं अधिक योग्य पात्र होता. मां मेरी गुरु थी अवश्य, किंतु, मैं उनका शायद योग्य शिष्य न था. अगर होता तो कदाचित अधिक श्रेष्ठ साहित्यिक होता, केवल प्रयोगवादी कवि बनकर न रह जाता.

मतलब यह कि जब कभी मैं प्रेमचंद के बारे में सोचता हूं, मुझे अपने जीवन का खयाल आ जाता है. मुझे महान चरित्रों से साक्षात्कार होता है, और मैं आत्मविश्लेषण में डूब जाता हूं. आत्म-विश्लेषण की मनःस्थिति बहुत बुरी चीज है.

जब मैं कॉलेज में पढ़ने लगा तो मेरे कुछ लेखक-मित्रों के पास प्रेमचंदजी के पत्र आये. मैं उन मित्रों के प्रति ईर्ष्यालु हो उठा. उन दिनों मैं उन लोगों को 'जीनियस' समझता था और

'प्रेमचंद का कथा-साहित्य पढ़कर आज हम एक उदात्त नैतिकता की तलाश करने लगते हैं... चाहने लगते हैं कि प्रेमचंद जी के पात्रों के मानवीय गुण हममें समा जायें.' रचनाकार प्रेमचंद पर मुक्तिबोध की आलोचनात्मक टिप्पणी—

प्रेमचंद को देवर्षि. अब सोचता हूं कि दोनों बातें गलत हैं. मेरे लेखक-मित्र जीनियस थे ही नहीं, बहुत प्रसिद्ध अवश्य थे और अभी भी हैं. किंतु वे प्रेमचंद के लायक न तब थे, न अब हैं.

और यहां हम हिंदी साहित्य के इतिहास के एक मनोरंजक और महत्वपूर्ण मोड़ तक पहुंच जाते हैं. प्रेमचंदजी भारतीय सामाजिक क्रांति के एक पक्ष का चित्रण करते थे. वे उस क्रांति के एक अंग थे. किंतु अन्य साहित्यिक उस क्रांति का एक अंग होते हुए भी उसके सामाजिक पक्ष की संवेदना के प्रति उन्मुख नहीं थे. वह क्रांति हिंदी साहित्य में छायावादी व्यक्तिवाद के रूप में विकसित हो चुकी थी. जिस फोटो का मैंने शुरू में जिक्र किया, उसमें के प्रसादजी इस व्यक्तिवादी भाव-धारा के प्रमुख प्रवर्तक थे.

यह व्यक्तिवाद एक वेदना के रूप में सामाजिक गर्भिताओं को लिये हुए भी, प्रत्यक्षत: किसी प्रत्यक्ष सामाजिक लक्ष्य से प्रेरित नहीं था. जैनेंद्र में तो फिर भी मुक्तिकामी सामाजिक ध्वन्यर्थ थे, किंतु आगे चलकर 'अज्ञेय' में वे भी लुप्त हो गये. कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचंद उत्थानशील भारतीय सामाजिक क्रांति के प्रथम और अंतिम महान् कलाकार थे. प्रेमचंद की भावधारा वस्तुत: अग्रसर होती रही, किंतु उसके शक्तिशाली आविर्भाव के रूप में कोई लेखक सामने नहीं आया. यह संभव भी नहीं था, क्योंकि इस क्रांति का नेतृत्व पढ़े-लिखे मध्यम-वर्ग के हाथ में था, और वह शहरों में रहता था. बाद में वह वर्ग अधिक आत्म-केंद्रित और अधिक बुद्धि-छंदी हो गया तथा उसने काव्य में प्रयोगवाद को जन्म दिया.

किंतु, क्या यह वर्ग कम उत्पीड़ित है? आज तो सामाजिक विषमताएं और भी बढ़ गयी हैं. प्रेमचंद का महत्व पहले से भी अधिक बढ़ गया है. उनकी लोकप्रियता अब हिंदी तक ही सीमित नहीं रह गयी है. अन्य भाषाओं में उनके अनुवादकर्ताओं के बीच होड़ लगी रहती है. प्रेमचंद द्वारा सूचित सामाजिक संदेश अभी भी अपूर्ण है. किंतु हम जो हिंदी के साहित्यिक हैं, उसकी तरफ विशेष ध्यान नहीं दे पाते. एक तरह से यह यथार्थ से भागना हुआ.

उदाहरणत: आज का कथा-साहित्य पढ़कर पात्रों की प्रतिच्छाया देखने के लिए हमारी आंखें आसपास के लोगों की तरफ नहीं खिंचती. कभी-कभी तो ऐसा लगता है, जैसे पात्रों की छाया ही नहीं गिरती, कि वे लगभग देहहीन हैं, लगता है कि हमारे यहां प्रेमचंद के बाद एक भी ऐसे चरित्र का चित्रण नहीं हुआ, जिसे हम भारतीय विवेक-चेतना का प्रतीक कह सकें. शायद अज्ञान के कारण मेरी ऐसी धारण होगी. कोई मुझे प्रकाश-दान दे.

किंतु, कुल मिलाकर मुझे ऐसा लगता है कि प्रेमचंद की जरूरत आज पहले से भी ज्यादा बढ़ी हुई है. प्रेमचंद के पात्र आज भी हमारे समाज में जीवित हैं, किंतु वे अब भिन्न स्थिति में रह रहे हैं. किसी के चरित्र का कदाचित अध:पतन हो गया है, किसी का शायद पुनर्जन्म हो गया है. बहुतेरे पात्र संभवत: नये ढंग से सोचने लगे हैं. यह भावना साधारणहै कि ये सब पात्र अपने सृजनकर्ता लेखक की खोज में भटक रहे हैं. उन्हें अवश्य ऐसा कोई-न-कोई लेखक शीघ्र ही प्राप्त होगा.

प्रेमचंद की विशाल छाया में बैठकर आत्म-विश्लेषण की मन:स्थिति मुझे अजीब खयालों में डुबो देती है. माना कि आज व्यक्ति पहले जैसा ही जीवन संघर्ष में तत्पर है, किंतु अब वह अधिक आत्म-केंद्रित और आत्म ग्रस्त हो गया है, माना कि इन दिनों वह समाज-परिवर्तन की, समाजवाद की, वैज्ञानिक विकास की, योजनबद्ध कार्य की, अधिक बात करता है. किंतु एक चरित्र के रूप में, एक पात्र के रूप में, वह सघन और निबिड़ आत्म-केंद्रित होता जा रहा है. माना कि आज वह अधिक सुशिक्षित-प्रशिक्षित है, और अनेक पुराणपंथी विचारों को त्याग चुका है, तथा जीवन-जगत से अधिक सचेत और सचेष्ट है किंतु मानो ये सब बातें, ये सारी योग्यताएं, ये सारी स्पृहणीय विशेषताएं, उसे अधिकाधिक स्वयं ग्रस्त बनाती गयी हैं. कदाचित, मेरा यह मंतव्य अतिशयोक्तिपूर्ण है, किंतु यह भी सही है कि वह एक तथ्य की ही अतिशयोक्ति है.

आश्चर्य मुझे इस बात का होता है कि आखिर आदमी को हो क्या गया है, उसकी अंतरात्मा जो एक जमाने में समाजोन्मुख सेवाभावी थी, आज आदर्शवाद की बात करते हुए भी इतनी अजीब क्यों हो गयी? एक बार बातचीत के सिलसिले में, एक सम्मानीय पुरुष ने मुझे कहा कि व्यक्ति जितना सुशिक्षित-प्रशिक्षित होता जायेगा,
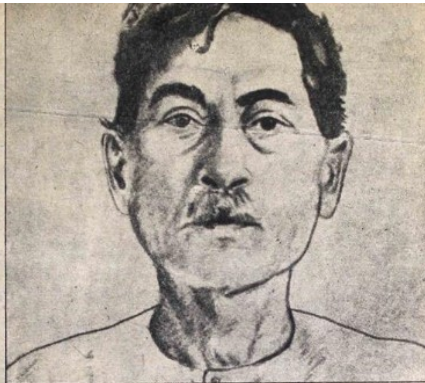
■ प्रेमचंद : आत्मा के शिल्पी

उतना ही बौद्धिक होता जायेगा, और उसी अनुपात में उसकी आत्मकेंद्रिता बढ़ती जायेगी, उतने ही उसके मानवोचित गुण (वर्च्यूज) कम होते जायेंगे, जैसे करुणा, क्षमा, दया, शील, उदारता आदि. मेरे खयाल से उसने जो कहा है, गलत है. किंतु मैं यह निश्चिय नहीं कर पाता कि उसका मंतव्य निराधार है. शायद, मैं गलती कर रहा हूंगा. जीवन के सिर्फ एक पक्ष को (अधूरे ढंग से और अपर्याप्त निरीक्षण द्वारा) आकलित कर मैं इस निराशात्मक मंतव्य की ओर आकर्षित हूं.

किंतु, कभी-कभी निराशा भी आवश्यक होती है. विशेषकर प्रेमचंद की छाया में बैठ, आज के अपने आसपास के जीवन के दृश्य देख, वह कुछ तो स्वाभाविक ही है. सारांश यह, कि प्रेमचंदजी का कथा-साहित्य पढ़कर आज हम एक उदार और उदात्त नैतिकता की तलाश करने लगते हैं, चाहने लगते हैं कि प्रेमचंदजी के पात्रों के मानवीय गुण हममें समा जायें, हम उतने ही मानवीय हो जायें जितना कि प्रेमचंद चाहते हैं. प्रेमचंदजी का कथा-साहित्य हम पर एक बहुत बड़ा नैतिक प्रभाव डालता है. उनका कथा-साहित्य पढ़ते हुए उनके विशिष्ट ऊंचे पात्रों द्वारा हमारे अंत:करण में विकसित की गयी भावधाराएं हमें न केवल समाजोन्मुख करती हैं, वरन् वे आत्मोन्मुख भी कर देती हैं. और जब प्रेमचंद में आत्मोन्मुख कर देते हैं, तब वे हमारी आत्म-केंद्रिता के दुर्ग को तोड़कर हमें एक अच्छा मानव बनाने में लग जाते हैं. प्रेमचंद समाज के चित्रणकर्ता ही नहीं, वरन वे हमारी आत्मा के शिल्पी भी हैं.

माना कि हमारे साहित्य का टेकनीक बढ़ता चला जायेगा, माना कि हम अधिकाधिक सचेत और अधिकाधिक सूक्ष्म-बुद्धि होते जायेंगे, माना कि हमारा बुद्धिगत ज्ञान संवेदनाओं और भावनाओं को न केवल एक विशेष दिशा में मोड़ देगा, वरन उनका अनुशासन-प्रशासन भी करेगा. किंतु क्या यह सच नहीं है कि मानवीय सत्यों और तथ्यों को देखने की सहज भोली और निर्मल दृष्टि, हृदय का सहज सुकुमार आदर्शवाद, दिल को भीतर से हिला देनेवाली कर्तव्योन्मुख प्रेरणा भी हमारे लिए उतनी ही कठिन और दुष्प्राप्त होती जायेगी?

ओह! काश, हम भी भोली कली से खिल सकते, पराये दु:ख में रोकर उसे दूर करने की भोली सक्रियता पा सकते. शायद मैं विशेष मन:स्थिति में ही यह सब कह रहा हूं. फिर भी मेरी यह कहने की इच्छा होती है कि समाज का विकास, अनिवार्यत: मानवोचित नैतिक-हार्दिक विकास के साथ चलता जाता है, यह आवश्यक नहीं है. सभ्यता का विकास नैतिक विकास भी करता है, यह जरूरी नहीं है.

यह समस्या प्रस्तुत लेख के विषय से संबंधित होते हुए भी उसके बाहर है. मैं केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि प्रेमचंद का कथा-साहित्य पढ़कर हमारे मन पर जो प्रभाव होते हैं, वे धीरे-धीरे हमारे चिंतना को इस सभ्यता-समस्या तक ले आते हैं. क्या यह हमें प्रेमचंद की ही देन नहीं है? □

(मुक्तिबोध रचनावली : पांच से साभार)

कफन : आत्मा की तलाश

परिचर्चा : डॉ. कमल किशोर गोयनका

प्रेमचंद की कहानी 'कफन' की जितनी चर्चा विगत पचास वर्षों में हुई है, उतनी किसी दूसरी कहानी की नहीं. इस चर्चा से प्रेमचंद और 'कफन' कहानी पर्याय बन गये हैं, वैसे ही जैसे 'रामचरितमानस' से तुलसीदास, 'गीतांजलि' से टैगोर तथा 'वार एंड पीस' से ताल्स्तोय का नाम जीभ पर आ जाता है. यह स्थिति रचना तथा रचनाकार की श्रेष्ठता एवं अमरता की सूचक है.

साहित्य की दुनिया में ऐसा कभी शताब्दियों में होता है कि कोई रचना देश और काल की सीमा को लांघते हुए इतनी अधिक पठनीय, उत्तेजक तथा मर्म को उद्वेलित करने वाली हो. 'कफन' ऐसी ही रचना है जिस पर विगत पचास वर्षों में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से विचार किया है और सर्वथा विपरीत निष्कर्ष दिये हैं. आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस कहानी को पढ़कर आहत हुए थे और उन्होंने कहा था, "अब प्रेमचंद की कल्पना अधिक उड़ानें भरने लगी है." शुक्ल का मत था कि साहित्य मानुषी भावों की रक्षा के लिए है, लेकिन 'कफन' इसके ठीक विपरीत होने के कारण, वे इसका समर्थन न कर सके.

'कफन' को लेकर चिंतन और विश्लेषण का यह सिलसिला अभी चल रहा है और भविष्य में भी इसी प्रकार चलता रहेगा. आने वाली पीढ़ियां 'कफन' को अपने तरीके से ग्रहण करेंगी और संभव है कि वे उसका उसका सर्वथा नया अर्थ लें. 'कफन' की स्वर्ण जयंती के अवसर पर हमने कुछ विद्वानों के विचार आमंत्रित किये, जिनमें प्रो. कल्याणमल लोढ़ा, (कलकत्ता विश्वविद्यालय), डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. प्रेमशंकर (सागर विश्वविद्यालय), रमाकांत, रामकुमार भ्रमर, प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन), प्रो. रामेश्वर शर्मा (नागपुर विश्वविद्यालय), डॉ. विवेकीराय, शैलेश मटियानी तथा हंसराज रहबर के विचार यहां प्रस्तुत हैं. इन विद्वानों में विभिन्न प्रकार से सोचने-समझने तथा लिखने वाले हैं, रचनाकार हैं और समीक्षक भी हैं, मार्क्सवादी हैं और गांधीवादी भी तथा कुछ के विचारों में आधुनिकता है और कुछ पुरातन से जुड़े हैं. इन विद्वानों के विचारों से पाठकों की यत्रतत्र असहमति भी हो सकती है, लेकिन हमें उन्हें अपने विचारों से 'कफन' को देखने-समझने की स्वतंत्रता देनी ही चाहिए. इस परिचर्चा के मूल में कफन कहानी की आत्मा की तलाश की चेष्टा है. अब यह पाठक देखें, यह प्रयास कहां तक सफल हुआ है.

प्रश्न : क्या आप इससे सहमत हैं कि 'कफन' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी है? जब आपने इसे सबसे पहले पढ़ा था, तब क्या आप इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे जो अब आपके मन में इस कहानी को लेकर है?

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा : मैं 'कफन' को प्रेमचंद की अन्यतम कहानियों में गिनता हूं. उनकी अनेक कहानियां भी श्रेष्ठ कहानियां हैं, इसलिए यह कहना कठिन है कि समग्र कहानियों की दृष्टि से वह सर्वश्रेष्ठ है. मैंने 'अन्यतम' शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया है. आज भी मेरी यही धारणा है.

डॉ. प्रभाकर माचवे : प्रेमचंद की अनेक श्रेष्ठ कहानियों में से यह एक है. जब पहले पढ़ा, तब भी वैसी लगी थी.

डॉ. [illegible]शंकर : 'कफन' निश्चय ही प्रेमचंद की सर्वोत्तम कहानियों में है. विश्व की कुछ चुनी हुई कहानियों में इसकी गणना की जा सकती है, खास तौर पर गोर्की और चेखव की परंपरा में. पहली बार जब इसे पढ़ा था, तब पहली प्रतिक्रिया यह हुई थी कि बाप बेटे के संबंध ऐसे हो सकते हैं क्या? उस समय किशोर था, आदर्शवादी गांधीवादी जमाने में जी रहा था. अब जब समय तेजी से बदला है, सोचता हूं प्रेमचंद वर्तमान के साथ भविष्य के इतिहास में भी झांक रहे थे—अमानवीकृत होता समाज.

रमाकांत : निश्चय ही 'कफन' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी है. यह हिंदी की श्रेष्ठतम कहानियों में है. पहली बार पढ़ा (या सुना) तब उनकी सारी कहानियां नहीं पढ़ी थीं, शायद अब भी सारी नहीं पढ़ीं, पर अधिकांश पढ़ ली हैं और उनके आधार पर ही अपने उक्त निष्कर्ष पर पहुंचा हूं.

रामकुमार भ्रमर : यह सर्वश्रेष्ठ कहानी नहीं है. यह भारतीय संवेदना की भी कहानी नहीं है.

प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी : कहानी के श्रेष्ठ होने के निकष प्रेमचंद जी ने स्वयं दिये हैं, पर उनसे हटकर मेरी अवधारणा है कि यह कहानी उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है. उत्तरोत्तर इसमें व्यंजना के विभिन्न स्तर खुलते गये हैं. फलतः धारणा पुष्ट ही होती गयी है.

प्रो. रामेश्वर शर्मा : नहीं, यह प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी नहीं है.

डॉ. विवेकीराय : मैं यह नहीं मानता कि वह प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी है. वास्तव में उनकी किसी एक कहानी को सर्वश्रेष्ठ कहना बहुत कठिन है. हां, यह कहा जा सकता है कि विविध कोणों से प्रेमचंद की समूची कहानियों में से पांच कहानियां चुनी जायें तो उनमें 'कफन' निश्चित रूप से रहेगी.

'कफन' के रचयिता : प्रेमचंद

शैलेश मटियानी

प्रभाकर माचवे

शैलेश मटियानी : कई बार यह हुआ कि बहुचर्चित रचना के बारे में यह जरूरी न रहा कि वह उतनी ही अच्छी लगी हो, जितनी कि अनेकों द्वारा निरूपित की गयी, किंतु 'कफन' को लेकर असहमति की गुंजाइश नहीं कि यह एक श्रेष्ठ कहानी है. सर्वश्रेष्ठ कहने की द्विविधा में न जाकर, कहना यह है कि मानव-नियति के साक्षात्कार की यह एक विरल कथा है, स्वयं प्रेमचंद के कथा-साहित्य में भी.

हंसराज रहबर : मैं इसे प्रेमचंद की 'सर्वश्रेष्ठ' नहीं 'निकृष्ठ' कहानी मानता हूं और मैं इस निष्कर्ष पर बहुत बाद में अपने मार्क्सवादी अध्ययन द्वारा पहुंचा हूं.

प्रश्न : यदि यह मान लिया जाये कि 'कफन' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी है, तब क्या आप यह चाहेंगे कि इस एक ही कहानी के आधार पर प्रेमचंद की कहानी-कला का मूल्यांकन किया जाये और उनकी शेष 290-92 कहानियों को अलग हटाकर रख दिया जाये?

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा : मैं प्रेमचंद की कहानी-कला का मूल्यांकन किसी एक कहानी के बल पर नहीं करना चाहता. उनकी समस्त रचना-सृष्टि को ही दृष्टिगत रखना होगा.

डॉ. प्रभाकर माचवे : ऐसा मूल्यांकन भ्रामक होगा. प्रेमचंद जैसे लेखक के कहानी-लेखन में क्रमशः विकास हुआ है. उनकी शेष कहानियों के परिप्रेक्ष्य में ही इसका मूल्यांकन करना चाहिए. एक कहानी के बलबूते दुनिया के किसी श्रेष्ठ कहानी लेखक का मूल्यांकन नहीं किया गया—न चेखव का, न मोपांसा का, न रवींद्रनाथ का.

डॉ. प्रेमशंकर : किसी एक ही कहानी के आधार पर किसी भी कहानीकार की संपूर्ण कहानी-कला के विवेचन की बात कोई भी समझदार व्यक्ति नहीं स्वीकार करेगा.

रमाकांत : किसी की भी एक कहानी के आधार पर (यदि उसने और कुछ लिखा है तो) उसकी कला का मूल्यांकन नहीं हो सकता, लेकिन उसकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं को निकाल कर भी उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता. देखना यह होता है कि लेखक विकास की किन मंजिलों से गुजरा है और किन रचनाओं में उसकी कला अपने चरम उत्कर्ष पर है. निश्चय ही 'कफन' में प्रेमचंद की कला अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है, लेकिन प्रेमचंद की कहानियों में सिर्फ यही याद नहीं रहती. **'नमक का दारोगा', 'दो बैलों की कथा', 'पूस की रात', 'विषम समस्या', 'ठाकुर का कुंआ', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'परीक्षा'** तथा अन्य बहुत-सी कहानियां विभिन्न कारणों से याद रहती हैं. प्रेमचंद सिर्फ 'कफन' के कारण नहीं, बल्कि इन कहानियों के कारण भी प्रेमचंद हैं. लेखक हर कहानी में एक ज्वलंत प्रश्न या जीवन का एक जिंदा पक्ष उठाता है और उस प्रश्न या पक्ष को हमारे सामने पूरा का पूरा खोल देता है. हमें उसके प्रति सूचित ही नहीं करता, सचेत और शिक्षित भी करता है. प्रेमचंद की महत्ता यह है कि उनकी कहानियां जिस भी प्रश्न या पक्ष को लेती हैं, उस पर अंतिम बात-सी कहती प्रतीत होती हैं.

रामकुमार भ्रमर : मैं तो मानता नहीं 'कफन' सर्वश्रेष्ठ कहानी है. प्रेमचंद की इस कहानी को उछालने के पीछे राजनीतिक स्वार्थ रहा है जो अत्यंत सतही ढंग का है और उसके कथानक में से निकाल लिया गया है. कहानी की मूल आत्मा में सतही राजनीतिक दृष्टि नहीं है, बल्कि मानवीय संवेदना की गहरायी है और उसमें भी व्यक्तिगत विद्रोह है. अतः यह कहानी स्थिति विशेष में व्यक्तिगत विद्रोह की कहानी है जो समाज के स्थायी मूल्य को प्रस्तुत नहीं करती.

प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी : नहीं. कला का व्यक्तित्व प्रत्येक सर्जना में पृथक-पृथक वैशिष्ट्य लिये हो सकता है. इस कहानी की उत्कृष्टता का निकष अलग है. फलतः इसी एक कहानी के माध्यम से उनका मूल्यांकन ठीक नहीं है—हां, इसके आधार पर उनकी कहानी-कला का उत्कर्ष बहुत कुछ निर्भर है.

प्रो. रामेश्वर शर्मा : मैंने पहले ही इसका उत्तर दे दिया है, अतः यह प्रश्न अकारथ हो जाता है.

डॉ. विवेकीराय : मात्र 'कफन' के आधार पर कहानीकार प्रेमचंद का समग्र मूल्यांकन नहीं हो सकता.

शैलेश मटियानी : 'कफन' को यदि सर्वश्रेष्ठ मान लिया जाये, तो इससे प्रेमचंद की शेष कहानियों के मूल्यांकन की प्रासंगिकता क्यों जाती रहेगी? 'कफन' प्रेमचंद के संवदेन और दृष्टि का एक अत्यंत व्यापक फलक हमारे सामने रखती है, लेकिन किसी भी लेखक की सर्वश्रेष्ठ रचना एकाएक प्रकट नहा होती. इसके पूर्वापर आधार हुआ करते ह. लेखक का सम्यक् आकलन उसके संपूर्ण वृत्त में ही किया जा सकता है, किसी एक कोण से नहीं. 'कफन' प्रेमचंद की कहानी-कला का एक कोण है, संपूर्ण वृत्त नहीं.

हंसराज रहबर : लेखक की किसी एक रचना को सर्वश्रेष्ठ कहने का यह अर्थ कदाचित नहीं होता कि उसकी शेष रचनाओं को व्यर्थ अथवा कूड़ा समझ लिया जाये. लेखक की प्रतिभा उसकी सभी रचनाओं में व्यक्त होती है. सर्वश्रेष्ठ रचना प्रतिभा के विकास का चरम बिंदु है.

प्रश्न : कुछ विद्वानों की राय है कि 'कफन' से एक 'नयी यथार्थवादी चेतना' आरंभ होती

रमाकांत

हंसराज रहबर

विवेकी राय

है. क्या आप इससे सहमत हैं.

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा : मैं यह स्वीकार करता हूं कि '**कफन**' से प्रेमचंद ने अपनी यथार्थवादी चेतना को एक नया उन्मेष दिया है. यथार्थवाद केवल एक ही दिशा या बंधी-बंधायी स्थितियों का चित्रण नहीं करता. उसकी चेतना समाज के अंतर्गठन पर भी उतनी ही आधृत रहती है, जितनी उसकी व्यवस्था और पद्धति एवं विषमता पर. इसके बिना कोई भी रचनाकार अपनी सर्जनात्मक शक्ति को 'आंतरिक स्वतंत्रता' के बिना फल प्रसू नहीं कर सकता.

डॉ. प्रभाकर माचवे : यह गलत है कि इस कहानी से ही कोई नयी यथार्थवादी चेतना प्रेमचंद में या हिंदी साहित्य में पैदा हो गयी. हां, प्रेमचंद का मोह-भंग (आदर्शों और मूल्यों से) '**गोदान**' में ही होना शुरू हो गया था. 1934 से 1936 तक यह बढ़ा.

डॉ. प्रेमशंकर : '**कफन**' हिंदी कहानी के नये यथार्थवादी मोड़ की सूचक है, पर प्रेमचंद इससे कुछ पूर्व ही इसकी शुरुआत कर चुके हैं. प्रेमचंद ने कई बार आदर्शवादी और सुधारवादी ढंग से रचना की तथा सदाशयता दिखायी या कल्पना की कि हृदय-परिवर्तन हो जायेगा. गांधीवादी तरीके से, पर उन्हीं के शब्दों में महाजनी सभ्यता निर्भय होती गयी और प्रेमचंद ने इस नग्न यथार्थ को पहचाना और '**कफन**' या '**पूस की रात**' जैसी कहानियां लिखीं. **गोदान**' और '**मंगलाचरण**' भी सामाजिक यथार्थ के प्रमाण हैं.

रमाकांत : यथार्थवादी चेतना नयी या पुरानी नहीं होती. यह किसी रचनाकार की अपने संसार को देखने की दृष्टि होती है जो रचनाकार के विकास के साथ-साथ विकसित होती है. '**कफन**' की यथार्थवादी चेतना वही है, जिसके दर्शन हमें '**गोदान**' में होते हैं. यह एक सत्यान्वेषी यथार्थदृष्टि है. उल्लेखनीय है कि नयी कहानी आंदोलन के पहले '**कफन**' की वैसी चर्चा नहीं होती थी, जैसी अब हो रही है, लेकिन नयी कहानी वालों ने '**कफन**' में चित्रित निर्मम यथार्थ को नहीं, इसकी अमानवीयता और आदर्शहीनता को रेखांकित किया. इसी को प्रेमचंद की नयी यथार्थचेतना का नाम दिया गया.

रामकुमार भ्रमर : मैं सहमत नहीं हूं. इसमें नया यथार्थवाद कहां है? जो नितांत व्यक्तिगत है, उसमें सामाजिक यथार्थ कहां से आयेगा?

प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी : यथार्थवादी चेतना के पीछे एक दर्शन है. द्वंद्वात्मक भौतिकवादी, जिसमें एक मात्र सामाजिक व्यवस्था ही दोषी होती है—व्यष्टि को विकृत करने में जिम्मेदार. प्रेमचंद में वह दर्शन अपनी समूची गहरायी में हो या न हो, पर उनकी यथार्थग्राही समझ की गहराती हुई चेतना इसकी सृष्टि के पीछे अवश्य है.

प्रो. रामेश्वर शर्मा : असल बात यह है कि '**कफन**' प्रेमचंद की मूल आदर्शवादी चेतना की रचना नहीं है, बल्कि अतियथार्थवादी बनने के उत्साह में यह रचना लिख डाली थी. वे स्वभाव से भीरु थे, इसलिए यथार्थवाद की दिशा में अधिक संचरण करने का हौसला न था. इस कहानी में किन्हीं उदात्त जीवन-मूल्यों अथवा महत्तर नैतिक एवं आत्मिक शक्तियों की परिणति नहीं है, बल्कि क्षुद्र जातीय द्वेष की अभिव्यंजना मात्र है. यह जातीय द्वेष उस सीमा तक पहुंच गया है, जबकि वह मानव संस्कृति के उदात्ततम मूल्यों का भी विरोधी बनकर कफन चोरों का भी समर्थन करने लगा है. '**कफन**' का घीसू-माधव नये ब्राह्मण हैं, जो ब्राह्मण के समान मौत की दावत खाते हैं, किसी की मौत पर जीवित रहते हैं. हम उस पुराने ब्राह्मण से नफरत करते हैं, तो इन नये ब्राह्मण-घीसू-माधव को कैसे स्वीकार कर सकते हैं? घीसू-माधव प्रेमचंदीय ब्राह्मण हैं, और भी यह कि महाब्राह्मण का मृतक से रागात्मक संबंध तो नहीं होता और यहां तो मानवीय राग-चेतना के संपूर्ण मूल्य को ध्वस्त कर प्रेमचंद घीसू-माधव का समर्थन करते नजर आते हैं और उस पर तुर्रा प्रगतिशीलता का.

डॉ. विवेकीराय : यही नयी असामान्य स्थिति नयी यथार्थवादी चेतना के रूप में व्याख्यायित होती है जिसमें रचनात्मक आशावादिता न होकर जीवन की अनंत ध्वंस स्थितियां उभरती हैं.

शैलेश मटियानी : जिन विद्वानों ने यह राय दी है, उनकी समझ पर तरस आता है. '**कफन**' से एक नयी यथार्थवादी चेतना का प्रारंभ मानने वाले विद्वान ऐसे लेखकों का अहित ही करेंगे, जो संवदेना के गहरे विवेचन में न जाकर सिद्धांत के उथले उन्मेष से परिचालित होते हैं. '**कफन**' से 'नयी यथार्थवादी चेतना' का प्रारंभ मानने वाले व्यक्ति को इस पड़ताल में जाना होगा कि तब उसमें प्रेमचंद की आदर्शवादी दृष्टि का पूरी तरह लोप क्यों नहीं हुआ है? क्या प्रेमचंद की अज्ञानता के कारण? जहां तक सहमत होने का प्रश्न है, पहले कह चुका हूं कि यह 'वस्तु' में भिन्न रचना है, 'दृष्टि' में नहीं.

प्रश्न : 'कफन' कहानी में आपको सबसे अधिक कौन-सी चीज प्रभावित करती है. घीसू और माधव की निष्क्रियता, पिता-पुत्र-बहू के परस्पर संबंधों में अमानवीयता एवं संवेदनहीनता, घीसू, माधव को निकम्मा, आलसी, अमानवीय बनाने वाली सामाजिक व्यवस्था, पिता-पुत्र का कफन के रुपयों से शराब पीना अथवा कहानी की दार्शनिक शब्दावली-धर्म, पाप-पुण्य, वैकुंठ, दान, मायाजाल और अंत में कबीर का दोहा आदि?

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा : '**कफन**' कहानी अपनी समग्रता में ही स्थायी प्रभाव छोड़ती है—उसे खंड खंड करके देखना न उचित है और न विवेकसंगत ही. रचनात्मक संदर्भ में मुझे गेस्टाल्ट अधिक सही लगते हैं. '**कफन**' की सार्थकता उसके व्यंग्य और विद्रूप चित्रण में है, जिसका रचना में आद्यापांत लेखक ने निर्वाह किया है. अत्याधुनिक दृष्टि से कोई भी रचना अपनी 'द्वंद्वात्मक' दृष्टि से ही पाठक को आकृष्ट करती है—वह इसके 'बींग', 'नान बींग' व 'बिकमिंग' में है. '**कफन**' कहानी अंत तक इसी सत्य का नियोजन करती है. कहानी अंत उसे चरम स्थिति पर ले जाकर समाप्त करता है—प्रेमचंद अर्थात् लेखक केवल तटस्थ सृष्टा है, और किसी सीमा तक दृष्टा भी. इसीलिए इस कहानी को उसकी समग्रता में ही पहचानना व परखना चाहिए.

डॉ. प्रभाकर माचवे : आपका प्रश्न कहानी को टुकड़े-टुकड़े करके देखता है. जो बातें आप गिना रहे हैं, वे सब जुड़ी हुई हैं—एक को दूसरे के काट पाना मुश्किल है. अमानवीयता—पारिवारिक संबंध और सामाजिक परिवेश दोनों में बहुत अर्थपूर्ण है. उसी को उद्घाटित करने के लिए दार्शनिक शब्दावली और कबीर का दोहा है.

डॉ. प्रेमशंकर : मुझे '**कफन**' में कई चीजें छूती हैं—अमानवीकरण करने वाली सामाजिक व्यवस्था मूल प्रस्थान बिंदु है, पर प्रेमचंद ने इसे गहरे संवेदना-स्तर पर पहचाना है. यदि घीसू-माधव कर्महीन हैं, तो इस 'अलगाव' का कारण वह व्यवस्था है जिसमें वे दुहे-छले जा रहे हैं. इस दृष्टि से वे व्यक्ति-चरित्र न होकर, वर्ग-चरित्र हैं. कहानी के अंत में जब प्रेमचंद वैकुंठ आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वे एक द्वंद्व को उभार रहे हैं. एक ओर प्रचलित मान्यताओं पर सोचते घीसू-माधव हैं, दूसरी ओर उनमें इसका निषेध भी है. बुधिया के प्रति अमानवीयता, शराब पीने आदि को इसी अमानवीकृत होते जाते समाज के संदर्भ में देखना चाहिए. ध्यान देने की बात है कि '**कफन**' चमरौधा टोला की कहानी है.

रमाकांत : कहानी का संपूर्ण कथ्य और कथा-विन्यास प्रभावित करता है. यह कहानी 'कलात्मक दृष्टि से भी, इसीलिए, प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों में है कि इसमें सभी कुछ की जबर्दस्त बुनावट है. प्रेमचंद की बहुत-सी कहानियां आज की भाषा में दुबारा लिखी जा सकती हैं, '**कफन**' नहीं लिखी जा सकती. मैं रचना या संगीत में किसी एक पक्ष या टुकड़े से प्रभावित नहीं होता. अगर कोई एक बात औरों की अपेक्षा अधिक उभर आये तो वही रचना चौपट हो जाती है. '**कफन**' की यही खूबी है कि ऐसा यहां नहीं है. सब कुछ वहीं है, जहां होना चाहिए और जहां वह आवश्यक है. घीसू-माधव के संवाद में जहां दार्शनिक, धार्मिक चर्चा है, उसका प्रतीकात्मक अर्थ है—इसी धार्मिक दृष्टिकोण ने हमारी अमानवीयता को सदियों से पोषित किया है, यह घीसू-माधव जैसे अशिक्षित दीनहीनों की भी रगों में समाया हुआ है. हमने उसे सहने और उससे संतुष्ट होने का संस्कार और शिक्षा पायी है.

रामकुमार भ्रमर : इसमें दर्शन नहीं है और न पिता-पुत्र का संबंध जो भारतीय दृष्टि से है, इसमें लगता ही नहीं है. समाज में ऐसे पिता-पुत्र नहीं मिलेंगे. मैं इस कहानी से चौंकता जरूर हूं. ओह! कफन के पैसों से शराब पी रहे हैं. कैसे आदमी थे वे दोनों? जो मैंने देखे ही नहीं. कहानी सामाजिक विद्रोह एवं संघर्ष की कहानी मानने पर तो आपको यह भी मानना होगा कि भूखी स्त्री यदि अपने बच्चे का मांस खा जाती है, तो वह भी सामाजिक विद्रोह की कहानी है. और यदि यह सामाजिक विद्रोह है, तब पन्ना धाय का चरित्र, मैं कहूंगा, मानव सभ्यता में हुआ ही नहीं.

प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी : घीसू-माधव को निकम्मा, आलसी, अमानवीय बनानेवाली सामाजिक व्यवस्था सर्वाधिक प्रभावित करती है

प्रो. रामेश्वर शर्मा : कहानी में प्रेमचंद का पतन मरणोन्मुख प्रेमचंद की बुद्धि का विनष्ट हो जाना सबसे अधिक प्रभावित करता है. जब बुद्धि द्वेष की ऐसी मंजिल पर पहुंच जाती है, जब मानव संस्कृति के लक्षावधि की साधना के बाद प्राप्त मूल्यों का नकार करने लगती है, और जब मौत का पकवान खाने वाले ब्राह्मण के जिस घृणित आचरण के प्रति वितृष्णा होनी चाहिए जो होती है, किंतु उसी आचरण का घीसू-माधव के लिए समर्थन करने लगती है, तब बुद्धि के इस दिवालियेपन को क्या कहा जायेगा?

डॉ. विवेकीराय : मुझे इस कहानी में सबसे **अधिक प्रभावित करता है जमींदार** द्वारा तत्पर **होकर सोत्साह कफन की व्यवस्था करना, क्योंकि वह गांव में परंपरा और व्यवस्था का प्रतिनिधि है. उसके रहते आदमी भले टूट जाये, परंपरा कैसे टूटेगी?**

शैलेश मटियानी : '**कफन**' में प्रभावित करती है प्रेमचंद की संवेदना और दृष्टि की अद्भुत संयुति. '**कफन**' कहानी को यदि सिर्फ व्यवस्था के तर्क से आप देखें, तब वह सिर्फ घीसू-माधव की कहानी क्यों होगी? व्यवस्था कोई इन दो जनों के लिए तो अलग से अमानवीय हुई न होगी? यह कैसी भी विसंगतियों के बीच मनुष्य में अनुराग और संवेदन के बच रहने की कहानी है और इस नाते ही यह उत्पीड़क व्यवस्था के मनुष्य भक्षी होने की कथा भी है कि यह संवेदनशील व्यक्ति को भी कैसे, बल्कि और ज्यादा मारती है. कैसी अद्भुत और बहुआयामी रचना है यह. इसे सिर्फ सिद्धांत के चश्मे से देखना गलत होगा. जहां तक दार्शनिक शब्दावली का सवाल है, श्रेष्ठ रचना की वस्तु भाषा को अलग-अलग करके देखना सही देखना नहीं है.

हंसराज रहबर : अमानवीय बनाने वाली सामाजिक व्यवस्था सर्वाधिक प्रभावित करती है, लेकिन कफन के नाम पर गिड़गिड़ाकर भीख मांगने और भीख के पैसे की शराब पी जाने से इस व्यवस्था को कोई हानि नहीं पहुंचेगी. □

मैक्सिको में हिंदी और प्रेमचंद

□ डॉ. जगदीश कुमार

● प्रेमचंद (मार्च, ३३). चित्रकार : ओयामा

लातीनी अमरीका में स्नातकोत्तर अध्ययन और अनुसधान का एक बहुप्रतिष्ठित संस्थान 'एल कोलेहियो दे मेहीको' है. इस संस्थान के अफ्रेशियाई अध्ययन केंद्र में भारतीय विभाग के स्नातकोत्तर छात्र इतिहास का विशेष अध्ययन करते हुए अनिवार्यतः हिंदी पढ़ते हैं. इस विभाग की संस्थापना भारत में मैक्सिको की राजदूत महामहिमा डॉ. (श्रीमती) ग्रासियाला दे ला लामा ने 1970 में की थी. सर्वश्री कैलाश वाजपेयी, विपिन चंद्र, आर.बी. जोशी आदि भारतीय विद्वान इस विभाग से संबद्ध रहे हैं. 1984 से मैं हिंदी का अध्यापन कर रहा हूं.

भारतीय इतिहास का अध्यापन डॉ. डेविड एन. लारेंसन और डॉ. बैंजामिन प्रीसियादो कर रहे हैं. इन दोनों विद्वानों ने क्रमशः 'कापालिक संप्रदाय' और 'पौराणिक कृष्णकथा' पर सोपाधि अनुसंधान किया है.इधर कुछ वर्षों से डॉ. लारेंसन 'कबीर-पंथ' के अध्ययन में लगे हैं और डॉ. प्रैसियादो ने भारतीय प्रजातांत्रिक प्रशासन पर पुस्तक लिखी है. फिलहाल डॉ. लारेंसन और मैं संत अनंतदास की 'कबीर परचई' के संपादन और अंग्रेजी अनुवाद में संलग्न हैं. हम तीनों मिल कर हिस्पानी के माध्यम से हिंदी अध्यापन की प्रथम पुस्तक भी तैयार कर रहे हैं. लातीन अमरीका मे और अन्यत्र हिस्पानी भाषियों की संख्या को देखते हुए यह कार्य उपयोगी सिद्ध होना चाहिए. मैंने आलादा (लातीनी अमरीकी विश्वविद्यालयों में अफ्रेशियाई अध्ययन की परिषद) की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेसों में क्रमशः हिस्पानी और केचुआ के साथ संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किये हैं.

हमारे छात्रों ने हिंदी भाषा की कक्षा में अंग्रेजी के माध्यम से प्रेमचंद की 'ईदगाह' पढ़ी है. इस कहानी के ग्रामीण वातावरण, बाल-मनोविज्ञान और स्वातंत्र्य-संग्राम-कालीन प्रतीकों ने उन्हें विशेषतः आकृष्ट किया. 'आधुनिक हिंदी साहित्य' संबंधी सेमिनार में भाग लेते हुए प्रेमचंद-साहित्य का सामान्य अध्ययन भी उन्होंने किया. प्रेमचंद संबंधी परिचर्चा में श्रीमती मधु भादुड़ी, का सहयोग हम स्थानांतरण के कारण नहीं ले पाये. हमारी दो छात्राओं कु. ईसाबेल और कु. अलसीरा ने इस परिचर्चा के बाद क्रमशः 'गांधीवाद और प्रेमचद' तथा 'कफन : एक समीक्षा' शीर्षक लेख हिस्पानी भाषा में लिखे. मैक्सिको-वासिनी कु. ईसाबेल ने श्रीमती सोनिया गांधी के इंटरव्यू (धर्मयुग, 9 जून, 1985) का हिस्पानी में अनुवाद किया है, जिसके कुछ अंश यहां के दैनिक 'एक्सैलियार' (2 अगस्त, 1986) में छपे हैं. मुगल स्थापत्य के अध्ययन में इनकी विशेष गति है. कोलंबिया की नागरिक कु. अलसीरा भारतीय स्त्री-समाज के अध्ययन में विशेष रुचि लेती हैं. समय मिला तो प्रेमचंद और हुआन रुल्फो का तुलनात्मक अध्ययन भी करना चाहती हैं. ये दोनों छात्राएं और पएब्ला नगर निवासी श्री राहुल, जो विवेकानंद पर प्रबंधिका लिख चुके हैं और पौराणिक शिव-कथा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना चाहते हैं, उच्चतर अध्ययन के लिए भारत आने वाले हैं. प्रेमचंद संबंधी परिचर्चा में हमें निम्नलिखित तीन मुद्दों ने विशेषतः आकृष्ट किया : 1. प्रेमचंद की मूल प्रेरणा. 2. प्रेमचंद का कथा-शिल्प. 3. प्रेमचंद की भाषा नीति.

इन शब्दों में, धरती के इस दूसरे सिरे पर, प्रेमचंद का पुण्य-स्मरण करते हुए मैं यहां हिंदी के अध्ययन और शोधकार्य में आनेवाली एक कठिनाई की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा. प्रवर्धनमान आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद इस संस्था ने हिंदी अध्यापन के लिए एक भाषा-प्रयोगशाला की सुविधा जुटा ली है और हिंदी पुस्तकों का अच्छा संग्रह भी कर लिया है. फिर भी, हिंदी अध्ययन की निरंतर प्रगति को देखते हुए यह संग्रह पर्याप्त कदापि नहीं है. मसलन प्रेमचंद के संदर्भ में 'कलम का सिपाही', 'प्रेमचंद विश्वकोष' आदि का अभाव खटकता है. प्रधानमंत्री की मैक्सिको यात्रा के दौरान विदेशमंत्री श्री शिवशंकर और विदेश सचिव श्री नरेंद्रप्रसाद जैन के सम्मुख मैंने इस कठिनाई की बात की तो उन्होंने कृपापूर्वक सहायता का आश्वासन दे दिया. हिंदी के यशस्वी लेखक और प्रबुद्ध पाठक भी सहयोग दे सकें तो हम अनुगृहीत होंगे. □

'मुबारक बीमारी' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी है

हंसराज रहबर

● प्रेमचंद : सन् १९२४

'कफन' कहानी के बारे में मेरी यह राय सर्वविदित है कि मैं उसे अराजकता को प्रोत्साहित करनेवाली गलत कहानी मानता हूं. उसे सर्वश्रेष्ठ कहानी बताकर प्रेमचंद के नाम पर प्रेमचंद की जनवादी परंपरा को नकारा गया और नकारा जा रहा है. इस कहानी के घीसू और माधव नकारात्मक पात्र हैं. वे पतनोन्मुख साहित्य के हीरो बन सकते हैं, स्वस्थ-संघर्षशील साहित्य के नहीं.

1981 में प्रेमचंद जन्मशती के सिलसिले में बंगलौर जाना हुआ तो कन्नड़ के एक लेखक ने प्रेमचंद पर मेरा साक्षात रिकार्ड किया और प्रश्नों के अलावा उसने यह प्रश्न भी पूछा कि मेरी नजर में प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानी कौन-सी है. मेरा उत्तर था–'मुबारक बीमारी'.

मेरे मुख से यह उत्तर अनायास निकल गया था और निकल इसलिए गया था कि 'मुबारक बीमारी' स्वस्थ प्रवृत्ति की सशक्त कहानी है और कला की दृष्टि से भी उसमें कोई दोष नहीं. पिछले दिनों पटियाला यूनिवर्सिटी में प्रेमचंद पर बोलने का अवसर मिला तो वहां भी मैंने इस बात को दोहराया तो यह प्राध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए चौंका देने वाली बात थी.

कारण यह कि यह कहानी इतनी उपेक्षित है कि प्रेमचंद पर लिखते समय इस कहानी का उल्लेख तक नहीं होता. प्रेमचंद पर जितने लेख जितनी पुस्तकें छपती हैं, उनमें बार-बार 'कफन' और 'पूस की रात' को ही दोहराया जाता है. कभी-कभार 'आहुति' का जिक्र भी आ जाता है लेकिन वह भी अधूरा क्योंकि कोई नहीं कहता कि प्रेमचंद ने सत्रह बरस पहले ('आहुति' कहानी गांधी-इर्विन समझौते के बाद 1931 में लिखी गयी थी) जो भविष्यवाणी की थी, वह 15 अगस्त, 1947 को सही सिद्ध हुई. सचमुच जॉन की जगह गोविंद बैठा और व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रही.

किसी भी लेखक की किसी रचना को सर्वश्रेष्ठ कहने में मतभेद हो सकता है. कई बार वह खुद अपनी किसी रचना को सर्वश्रेष्ठ बताते समय असमंजस में पड़ जाता है.

कारण यह है कि इस निष्कर्ष तक पहुंचने में भाषा, कला, अभिरुचि और दृष्टिकोण इत्यादि कई बातों का दखल होता है.

इसलिए 'सर्वश्रेष्ठ' को वाद-विवाद का मुद्दा बनाने के बजाये मैं अपने उत्तर में इतना संशोधन कर लेना पसंद करूंगा कि अगर मुझे प्रेमचंद की पंद्रह श्रेष्ठ कहानियों की सूची तैयार करने के लिए कहा जाये तो उस सूची में इस कहानी का नंबर पहला, दूसरा-तीसरा या चौथा कौन-सा होगा, यह सोचने की बात है. इसका निर्णय कहानियां चुन लेने के बाद ही हो सकेगा, लेकिन यह तय है कि मेरी उस सूची में 'कफन', 'पूस की रात' और 'नमक का दारोगा' कहानियां शामिल नहीं होंगी, नहीं होंगी.

1949 में जब मैं प्रेमचंद पर अपनी पुस्तक लिख रहा था तो 'मानसरोवर' के आठों भागों और 'कफन' संग्रह में यह कहानी नहीं थी. मैंने उसे उर्दू में पढ़ा और तभी इसे हिंदी में छपवाया था. उसके बाद यह कहानी मेरी नजर से नहीं गुजरी और मुझे यह भी याद नहीं रहा कि मैंने इसे उर्दू की किस पत्रिका में पढ़ा था. लेकिन उसका भाव और उसके पात्र मेरे मस्तिष्क में सुरक्षित रहे. यही उसके सशक्त और श्रेष्ठ कहानी होने का प्रमाण है. इसीलिए कन्नड़ लेखक को अपने उत्तर में मैंने इसे अनायास सर्वश्रेष्ठ भी कह दिया

इस कहानी में दो पीढ़ियों के दृष्टिकोणों में टकराव है. अंत में वृद्ध पीढ़ी युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण को स्वीकार लेती है. इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि नये और पुराने के संघर्ष में पुराना नये से पराजित होता है. कथानक भी संक्षेप में बता देना होगा क्योंकि बहुत कम पाठकों ने इस कहानी को पढ़ा होगा. बहुत से लेखकों और प्राध्यापकों से चर्चा हुई, उन्होंने भी इसे नहीं पढ़ा

लाला हरनाम दास एक वृद्ध व्यक्ति हैं. गांव में उनकी आटे की चक्की है. सामंती वातावरण है जीवन मंद गति से धीरे-धीरे चल रहा है. चक्की पर सूरज उगते ही काम शुरू हो जाता है और डूबने तक जारी रहता है. लेकिन कोई नियम नहीं, योजना या व्यवस्था नहीं. काम करने वाले मजदूर और मिस्तरी कभी बीड़ी पीने, कभी नमाज पढ़ने और कभी खाना खाने बैठ जाते हैं. पिसाई कम होती है, यों भी पीछे आया अनाज पहले और पहले आया पीछे पिसता है. जौ गेहूं में और गेहूं चने में मिल जाता है, गाहकों को शिकायत रहती है.

अब हरनाम दास का बेटा हरिराम प्रतिवाद के रूप में सामने आता है. हरिराम ने शहर में रहकर बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की है. वह बाप से कहता है–"पिताजी, आप अपने काम को नियमित और व्यवस्थित कीजिए. सूरज उगते ही शुरू करने के बजाये सुबह नौ बजे शुरू कीजिए और शाम को पांच-साढ़े पांच बजे बंद कर दीजिए. बीच में एक घंटे की छुट्टी हो. बाकी समय काम होता रहे, उस दौरान बीड़ी-शीड़ी का कोई चक्कर न हो. जो अनाज पिसने आये उसे बाकायदा तोलकर तरतीबवार रखा जाये. पहले आया पहले और पीछे आया पीछे पिसे ताकि गाहकों को कोई शिकायत न रहे."

इस पर हरनाम दास चिढ़ जाता है और बेटे को डांटता है–"तू शहर में रहकर चार अक्षर पढ़ आया और हमें अक्कल सिखाने लगा. हमने क्या धूप में बाल सफेद किये हैं!" बेटा चुप रह जाता है.

अब घटना यों घटित होती है कि बाप बीमार पड़ जाता है और बीमारी इतनी लंबी खिंचती है कि वह साल-डेढ़ साल चारपाई से नहीं उठ सकता. उसे यह चिंता सताती है कि हरिराम ने दखल दिया तो कारोबार चौपट हो जायेगा. वह अपने मुंशी को बुलाकर हिदायत देता है कि कारोबार तुम देखना, हरिराम को इसकी कुछ समझ नहीं. उसे चक्की पर आने ही मत देना. लेकिन मुंशी में हरिराम को रोकने की हिम्मत कहां?" वह काम संभालता है और उसे अपनी योजना के अनुसार नियमित और व्यवस्थित करता है. डेढ़ साल बाद जब हरनाम दास स्वस्थ होकर दूकान पर आता है तो देखता है कि सफेद चादरें बिछी हुई हैं, गाव तकिए लगे हुए हैं, उन पर मुंशी और हरिराम बैठे हैं. अनाज बोरियों में कतार-दर-कतार तरतीबवार रखा है और एक की जगह दो चक्कियां चल रही हैं. तब वह कहता है–"बेटा, काम तुम संभालो. हम बूढ़े जवानों की राह में खाहमखाह रुकावट बनते हैं."

जिंदगी की रफ्तार कहीं तेज और कहीं सुस्त है. इससे शहर में और देहात में, नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के दरम्यान विसंगतियां उत्पन्न होती हैं और द्वंद्व की स्थिति पैदा हो जाती है. कहानी का घटना स्थल गांव है, जहां जिंदगी की रफ्तार मद्धम है और पितृ–सत्ता के अधिकार का प्रभाव अधिक है. पितृ-सत्ता समाज में बड़ा अपने को छोटे से हर लिहाज से श्रेष्ठ मानता है. उम्र में बड़ा होने के नाते बुद्धि और अनुभव में भी बड़ा मानता है. छोटा बड़े के आगे मुंह खोले, तर्क करे तो वह धृष्टता है. छोटे को सीख देना, उसे डांटना-डपटना उसका जन्म सिद्ध अधिकार है. प्रेमचंद की 'बड़े भाई साहब' कहानी इसी अधिकारवाद पर करारी चोट है. कहानी की खूबी यह है कि बड़ा भाई सारा दिन किताबें चाटने के बावजूद इम्तहान में फेल होता है जबकि छोटा भाई खेल-कूद में हिस्सा लेने और मस्ती मारने के बावजूद हर साल अच्छे नंबरों से पास होता है. फिर भी बड़ा भाई छोटे को डांटता है कि तुम पढ़ते क्यों नहीं, खेल-कूद में समय क्यों बरबाद करते हो.

'मुबारक बीमारी' में इसी विषय को ऊंचे स्तर पर गंभीर ढंग से उठाया गया है. हरनाम दास और हरिराम में जहां बाप-बेटे का संबंध है वहां हरनामदास पुरानी पीढ़ी का और हरिराम युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है. नयी पीढ़ी पूर्वाग्रहों और रूढ़िगत संस्कारों से मुक्त होती है, इसलिए उसकी दृष्टि छोटे से छोटे परिवर्तन को पहचान लेती है और नये को चट पकड़ लेती है. इसके विपरीत पुरानी पीढ़ी अपनी अल्प बुद्धि और नये को ग्रहण करने की क्षमता खो बैठती है. हरनाम दास और हरिराम में द्वंद्व की स्थिति इसी कारण उत्पन्न हुई है. हरिराम ने बी.ए. की परीक्षा ही पास नहीं की, वह शहर की नयी संस्कृति के प्रगतिशील तत्व लेकर गांव में लौटा है. जब वह अपने नये ज्ञान के आधार पर पिता को पुराना ढर्रा बदलने की बात कहता है तो पिता का पितृ सत्ता प्रधान समाज से विरासत में मिला अहंकार आहत होता है और वह सांप की तरह फन उठा कर फुंकार उठता है. शिक्षित बेटे की नयी पीढ़ी की बात तक सुनने से इनकार कर देता है.

अब कोई जरूरी नहीं कि पिता बीमार पड़े और पुत्र को अपना ज्ञान व्यावहारिक रूप से प्रदर्शित करने का मौका मिले. आमतौर पर जिंदगी में ऐसा होता नहीं. हरनामदास की लंबी बीमारी या तो अपवाद है या फिर प्रेमचंद की कल्पना मात्र है और साथ यह भी मानिए कि कल्पना कितनी सुंदर और सुखद है. घटनाओं को ज्यों का त्यों जैसा कि वे घटित होती हैं वर्णन कर देना कला नहीं, फोटोग्राफी है. यथार्थ में कल्पना के समावेश ही से साहित्य बनता है. 'मैं कहानी कैसे लिखता हूं' शीर्षक संक्षिप्त निबंध में प्रेमचंद ने लिखा है, 'मेरे किस्से प्रायः, किसी न किसी प्रेरणा अथवा अनुभव पर आधारित होते हैं, उनमें नाटक का रंग भरने की कोशिश करता हूं. लेकिन घटना-मात्र का वर्णन करने के लिए मैं कहानियां नहीं लिखता. मैं उनमें किसी दार्शनिक और भावात्मक सत्य को प्रकट करना चाहता हूं जब तक ऐसा कोई आधार नहीं मिलता मेरी कलम ही नहीं उठती. आधार मिल जाने पर मैं पात्रों का निर्माण करता हूं. कई बार इतिहास के अध्ययन से भी प्लाट मिल जाता है. लेकिन कोई घटना कहानी नहीं होती, जब तक कि वह किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त न करे."

पात्रों के निर्माण की तरह कहानी में नाटक का रंग भरने और सत्य को स्पष्ट करने के लिए लेखक को घटनाओं का भी निर्माण करना होता है. देखना यह पड़ता है कि जिस घटना का निर्माण किया जा रहा है, वह विषय और वातावरण के अनुकूल, सहज और स्वाभाविक है और उससे कहानी के केंद्र बिंदु को उभारने में मदद मिलती है. वृद्ध हरनामदास की बीमारी विषय के अनुकूल है और स्वाभाविक जान पड़ती है. बीमारी शरीर

के भीतर विकारों, विकृतियों और ग्रंथियों से उत्पन्न होती है और विकृतियां जितनी प्रबल होती हैं, बीमारी उतनी ही लंबी खिचती है. लंबी बीमारी से बच जाने का मतलब है आरोग्य प्राप्त करना, विकृतियों और विकारों से मुक्ति पा जाना, उन्हें शरीर से निकाल फेंकना. हरनाम दास भी जब लंबी और भयंकर बीमारी के बाद चक्की पर आता है तो वह तन से और मन से स्वस्थ है, विकारों और ग्रंथियों से मुक्ति पा चुका है और वह अपने सामने उपस्थित सत्य को खुलेपन से स्वीकार करता है, यों प्रेमचंद ने बाप की बीमारी को प्रतीक के तौर पर इस्तेमाल किया है और शीर्षक को सार्थक बनाया है.

जिंदगी कदम-कदम आगे बढ़ती है, ऊपर उठती है, निरंतर विकास, निरंतर प्रगति ही से हम आदिम युग से अणु युग में पहुंचे हैं, विकास और प्रगति के इसी नियम के अनुसार नयी पीढ़ी अपनी पिछली पीढ़ी से आगे होती है. कारण यह कि नयी पीढ़ी को जो अनुभव और ज्ञान पिछली पीढ़ी से विरासत में मिलता है, उसमें वह अपना ज्ञान और अनुभव जोड़कर बाद की पीढ़ी को सौंपती है. सृष्टि के प्रारंभ से यही क्रम जारी है. अर्थात यह एक निरपेक्ष सत्य है, जिसे प्रेमचंद ने चक्की की सामान्य और छोटी-सी घटना द्वारा एकदम सहज ढंग से उद्घाटित किया है. यह बात उनकी परिपक्व लेखनी और प्रौढ़ चिंतन की परिचायक है. बहुत बड़ी बात को सामान्य और सहज ढंग से कहना ही कला है और यह कला लंबे अभ्यास के बाद ही आती है. नयी पीढ़ी के आगे होने का यह अर्थ लगाना कि नयी पीढ़ी का प्रत्येक युवक मां के पेट से अभिमन्यु पैदा होता है, बहुत बड़ी भूल है. इस भूल से बचना भी इतना ही आवश्यक है जितना कि पुरानी पीढ़ी को अपने ही अनुभव को सब कुछ समझ बैठने की भूल से बचना आवश्यक है.

अंत में 'मुबारक बीमारी' और 'कफन' की तुलना करना अप्रासंगिक नहीं होगा. दोनों कहानियों में बाप-बेटा दो ही मुख्य पात्र हैं. 'मुबारक बीमारी' के बाप-बेटा कर्मशील और सकारात्मक हैं. द्वंद्व किंतु यह है कि बाप अपनी पीढ़ी के जीवन मूल्यों पर अटका हुआ है जबकि बेटा इन मूल्यों को विकसित करना और उन्हें आगे बढ़ाना चाहता है. प्रगतिशील प्रेमचंद की संवेदना बेटे के साथ है, और अंत में उसी की जीत होती है. इसके विपरीत 'कफन' के बाप-बेटा निठल्ले और कामचोर हैं. निठल्ले और कामचोर बनने के कारण कुछ भी हों, मनुष्य प्रकृति और परिस्थिति के आगे घुटने टेक देने के लिए नहीं, उनके विरुद्ध संघर्ष करने और उन्हें बदलने के लिए बना है. घीसू और माधव दोनों ने संघर्ष से मुंह मोड़ लिया है, दोनों के कोई जीवन मूल्य नहीं. कफन के नाम पर गिड़गिड़ाकर भीख मांगते हैं और भीख के पैसे की शराब पी जाते हैं. शराब के नशे में माधव कहता है कि वह तो मुझे पूछेगी कि कफन क्यों नहीं दिया. ढीठ और काइयां घीसू उत्तर देता है कि "बेटा, उसे कफन जरूर मिलेगा. यह समाज जीवित को तो भूखा-नंगा रख सकता है, पर मृतक को कफन न देने में उसकी प्रतिष्ठा जाती है." अर्थात बाप काइयां और ढीठ बन चुका है और बेटा बनने की प्रक्रिया में है. यह प्रक्रिया विकास की नहीं ह्रास और पतन की है. शरत् ने लिखा है कि लड़ाई समाज से नहीं समाज के अविचार से है. घीसू और माधव का आचरण समाज विरोधी है. ऐसे समाज विरोधी और नकारात्मक तत्व पश्चिम के ह्रासशील और पतनोन्मुख साहित्य ही के पात्र बन सकते हैं क्योंकि वे मानवता के विकास और भविष्य में आस्था खो बैठे हैं और अतीत के बर्बर युग में लौट जाना चाहते हैं, प्रेमचंद से यह भूल हुई कि उन्होंने अपनी स्वस्थ और जनवादी परंपरा से हटकर 'कफन' कहानी लिखी. इसे उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी मान लेने का मतलब था, उनकी इस भूल को दोहराना. यह भूल पचास बरस से बराबर दोहरायी जा रही है. परिणाम यह कि आज हमारे कथा साहित्य पर मुख्यतःबीमार और ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति हावी है. पहले जेम्स ज्वायस और डी.एच. लारेंस की नकल होती रही फिर कामू-काफ्का की नकल होने लगी और आज तक हो रही है, स्वस्थ और जनवादी प्रवृत्ति की श्रेष्ठ कहानी 'मुबारक बीमारी' के उपेक्षित होने का कारण भी यही है. □

प्रेमचंद की कहानियां : दो

आबे हयात

'आबे हयात' प्रेमचंद की उर्दू में लिखी कहानी है जो 'सुबहे-उम्मीद' के मार्च १९२० के अंक में छपी थी. 'मानसरोवर' के किसी भी खंड में यह संकलित नहीं है और संभवतः हिंदी की किसी पत्रिका में अब तक प्रकाशित नहीं हुई है.

प्रेमचंद को आमतौर पर सामाजिक यथार्थवाद का प्रणेता माना जाता है लेकिन प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंद ने काल्पनिक आबे-हयात के माध्यम से मानव मन की बारीकियों, वहां छिपी कुंठाओं और दमित इच्छाओं को बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया है.

डॉक्टर घोष एक अजीबो-गरीब आदमी थे. एक बार उन्होंने अपने चार सम्मानित दोस्तों को प्रयोगशाला में मिलने के लिए बुलाया. उनमें से तीन तो इतने वृद्ध थे कि उनकी दाढ़ियां भी सफेद हो गयी थीं. उनके नाम थे—बाबू दयाराम, ठाकुर विक्रम सिंह और लाला करोड़ीमल. चौथी एक बेवा थी जिसका नाम श्रीमती चंचल कुंवर था. बुढ़ापे ने उनके जिस्म पर झुर्रियां डाल दी थीं. यह चारों व्यक्ति बहुत उदास रहा करते थे. उनकी जिंदगियां तल्ख हो गयी थीं और सबसे बड़ा सितम यही था कि वे अभी तक जीवित थे.

लाला करोड़ीमल शबाब में एक संपन्न व्यापारी थे. मगर उन्होंने अपनी सारी दौलत सट्टे में उड़ा दी थी और अब सिर्फ शिष्ट भिक्षा वृत्ति पर गुजारा करते थे. ठाकुर विक्रमसिंह भोग-विलास और आनंद के बंदे थे. उन्होंने

अपनी दौलत ही नहीं, अपनी सेहत भी भोग-लिप्साओं पर कुर्बान कर दी थी और अब उनका शरीर अनेक रोगों का केंद्र बना हुआ था. वह बहुत परेशान और उदास रहा करते थे. बाबू दयाराम किसी जमाने में वकील थे और कौमी तहरीकों में भी कुछ हिस्सा लिया था. मगर किसी न किसी वजह से वह बदनाम हो गये थे और अब कोई उनके करीब न फटकता था. गोशा-ए-नाकामी में पड़े दिन काट रहे थे. रहीं श्रीमती चंचल कुंवर—किसी जमाने में उनके हुस्न का शोहरा था. बहुत अर्से से वह पवित्र स्थानों की तीर्थ यात्रा करने में व्यस्त थीं. नगर के सम्मानित लोग यहां तक कि उनके मित्र और रिश्तेदार भी उनसे परहेज करते थे. करोड़ीमल, दयाराम, विक्रमसिंह—तीनों हजरात किसी जमाने में इन श्रीमती जी के प्रेमी थे. यहां तक कि एक बार परस्पर लाग-डांट के कारण ही उनमें खून-खराबे की नौबत भी आ चुकी थी. मगर अब वे पिछली बातें ख्वाब-ओ-खयाल हो गयी थीं. उनकी याद भी कष्टप्रद हो गयी थी.

डॉक्टर घोष उन आदमियों को बैठने का इशारा करके बोले, "दोस्तो! आपको मालूम है कि मैं अपना वक्त छोटे-मोटे प्रयोग करने में बिताया किया करता हूं. आज मुझे एक प्रयोग में आपकी मदद की जरूरत है." अगर कही बातों पर एतबार किया जाये तो डॉक्टर घोष की लेबोरेटरी एक अजूबा चीज थी. कमरा अंधेरा और पुराने ढंग का था. मकड़ियों के जाले खिड़कियों पर पर्दे का काम दे रहे थे और फर्श पर बरसों की गर्द जमी हुई थी. दीवारों से मिली हुई कई साखू की अलमारियां थीं. उनमें सजिल्द किताबें चुनी हुई थीं. बीच की अलमारी में भैरों की एक मूरत रखी हुई थी. कुछ लोगों का खयाल था कि कठिनाई में डाक्टर साहब इसी मूरत से मशवरा किया करते थे. कमरे के सबसे अंधेरे कोने में एक ऊंची-पतली अलमारी थी. उसमें से मनुष्य का एक कंकाल कुछ-कुछ नजर आता था. उसी के करीब दो अलमारियों के बीच में एक धुंधला-सा आईना रखा हुआ था, जिसका सुनहरी चौखटा मैला हो रहा था. कहा जाता था कि डॉक्टर साहब के स्वास्थ्य लाभ से मरे हुए मरीजों की रूहें इसी आईने में रहती थीं और जब कभी वे आईने की तरफ देखते थे तो वे सबकी सब उनकी तरफ घूरने लगती थीं. कमरे की दूसरी तरफ एक हसीना की आदम कद तस्वीर थी, मगर काफी समय बीत जाने की वजह से चेहरे और कपड़े का रंग उड़ गया था. पचास बरस का अर्सा हुआ, डाक्टर साहब ने इसी हसीना के सामने शादी का प्रस्ताव रखा था. मगर शादी के कुछ ही दिन पहले वह बीमार पड़ गयी और अपने अभिलाषी डाक्टर की दवा खाकर इस दुनिया से चल बसी थी. प्रयोगशाला की सबसे अजीब चीज का जिक्र करना अभी बाकी है. यह एक काली जिल्द की मोटी किताब थी. इस किताब का नाम किसी को न मालूम था लेकिन लोग यह जानते थे कि यह जादू की किताब है. एक बार खादिम ने गर्द झाड़ने के लिए इस किताब को उठाया था. किताब के उठाते ही अलमारी में रखा हुआ अस्थि-पंजर कांप उठा. हसीना की तस्वीर एक कदम आगे बढ़ गयी और सदहा खौफनाक सूरतें आईने में झांकने लगीं. इतना ही नहीं, भैरों की मूरत के तेवर बदल गये और उसके मुंह से "बस करो, बस करो " की आवाज निकलने लगी थी.

डॉक्टर घोष की जबान से प्रयोग का जिक्र सुनकर उनके चारों दोस्तों ने समझा कि या तो हमें हवा से खाली शीशे की नली में किसी चूहे की मौत का तमाशा दिखाया जायेगा या खुर्दबीन से मकड़ी के जाले का अध्ययन करना होगा या किसी किस्म की और कोई वर्णनातीत बेतुकी बात होगी, क्योंकि ऐसे ही प्रयोगों के मुशाहदे के लिए डाक्टर साहब पहले भी बीसियों बार अपने दोस्तों को परेशान कर चुके थे. उन्हें निर्णायक प्रयोग से कुछ ज्यादा शौक न पैदा हुआ. मगर डॉक्टर साहब उनके जवाब का इंतजार किये बगैर उठ खड़े हुए और लंगड़ाते हुए कमरे के दूसरे कोने से वहीं जखीम किताब उठा लाये जो आम भाषा में जादू की किताब मशहूर थी. उन्होंने इस किताब को खोला और पृष्ठों में से एक गुलाब का फूल निकाला जो कभी सुर्ख रहा होगा, पर उस वक्त मटियाला हो रहा था. उसकी पंखड़ियां ऐसी खुश्क हो गयी थीं गोया छूते ही चूर-चूर हो जायेंगी.

डॉक्टर साहब ठंडी सांस लेकर आहिस्ता से बोले, "आज पचपन साल हुए, यह गुलाब का फूल जो अब बिलकुल मुरझाया हुआ है और छूने से चूर-चूर हुआ जाता है, सुर्ख और खिला हुआ था. यह उस हसीना का तोहफा था, जिसकी तस्वीर सामने लटक रही है और मैं इसे शादी के दिन अपने कपड़ों में लगाना चाहता था. इन औराक में यह फूल पचपन साल तक दफन रहा है. क्या यह आधी शताब्दी पुराना फूल फिर हरा हो सकता है?" श्रीमती चंचल कुंवर ने बेदिली से सिर हिलाकर कहा, "यह तो ऐसा ही है जैसे कोई पूछे कि किसी बूढ़ी औरत का झुर्रीदार चेहरा फिर चिकना हो सकता है?"

डाक्टर घोष ने फर्माया, "अच्छा, देखो."

यह कहकर उन्होंने मेज पर रखे हुए मटके का ढकना उठाया और उस मुरझाये हुए फूल को पानी में डाल दिया जो उसमें भरा हुआ था. पहले कुछ देर तक तो फूल पानी पर तैरता रहा. उस पर पानी का कुछ असर न हुआ. लेकिन एक ही लम्हे में आश्चर्यजनक परिवर्तन नजर आने लगा. चिपटी और सूखी हुई पंखड़ियां हिलीं और उनका रंग आहिस्ता-आहिस्ता सुर्ख होने लगा. ऐसा मालूम होता था कि फूल एक गहरी नींद से जाग रहा है. पतला डंठल और पत्तियां हरी हो गयीं और देखते-देखते वह पचास साला फूल बिल्कुल ताजा नवविकसित मालूम होने लगा. यह अभी अच्छी तरह खिला न था. बीच की कुछ पंखड़ियां लिपटी हुई थीं. उन पर शबनम की दो बूंदें भी चमक रही थीं.

डॉक्टर साहब के दोस्तों ने लापरवाही से कहा, "तमाशा तो बहुत अच्छा है लेकिन बताइए यह हुआ क्यों कर?" उन लोगों ने बाजीगरों के इससे भी कहीं अजीब करिश्मे देखे थे.

डॉक्टर घोष बोले, "क्या आप लोगों ने कभी उस घोर अंधकार का, जो सिकंदर के अमृत कुंड तक पहुंचने में पड़ा था, का नाम नहीं सुना?"

दयाराम, "सुना जरूर है, मगर वहां का पानी किसी को मिला कब?"

डॉक्टर घोष, "इसलिए नहीं मिला कि किसी ने उसकी ठीक तरह से तलाश नहीं की. अब तहकीक से मालूम हुआ है कि जुल्मात में आबे-हयात का एक चश्मा है. उसके किनारे बड़े-बड़े दरख्त हैं जो कई सदियों पुराने होने पर भी आज तक हरे-भरे हैं. मुझे इन गवेषणाओं का प्रेमी समझकर मेरे एक दोस्त ने थोड़ा-सा पानी मेरे पास भेजा है. वह इस प्याले में भरा हुआ है."

ठाकुर विक्रमसिंह को इन बातों का पूरी तरह यकीन न हुआ. फिर भी उन्होंने पूछा, "हां, होगा, लेकिन यह बतलाइए कि इस पानी का असर इंन्सान के जिस्म पर भी हो सकता है?"

डाक्टर घोष, "यह आपको अभी एक क्षण में मालूम हुआ जाता है. आप सब हजरात इस पानी को बेतकल्लुफ पियें ताकि आपका शबाब एक बार फिर लौट आये. मुझे तो जवान होने की इच्छा नहीं है, क्योंकि मैं बहुत मुसीबतें झेलकर इस आलम तक पहुंचा हूं. अगर आपको शौक हो तो मैं इस पानी का प्रयोग करूं " यह कहकर डाक्टर घोष ने चार शीशे के गिलास निकाले और उन्हें उस पानी से भरने लगे. पानी में कोई जीवनदायी गुण जरूर था क्योंकि गिलासों के हाथ से छोटे-छोटे बुलबुले लगातार उठने लगे वह ऊपर आकर चमकीली फुवार बनते थे और तब फूट जाते थे. इसके सिवा इसमें से एक लुभावनी खुशबू निकल रही थी. यह देखकर लोगों को पानी की तासीर का कुछ यकीन होने लगा हालांकि उन्हें यह विश्वास न होता था कि कोई बूढ़ा आदमी यह पानी पीकर जवान हो सकता है. फिर भी सब-के-सब पानी पीने के लिए तैयार हो गये. डाक्टर घोष ने उन्हें इस कदर शौकीन देखकर उनसे एक क्षण सोच-विचार करने की दरख्वास्त की और बोले, "मेरे प्यारे और मुअज्जिज दोस्तो, आप लोगों को पूरी जिंदगी का तर्जुबा हो चुका है, इसलिए पानी को पीने से पहले अपने जीवन के लिए कुछ सिद्धांत तय कर लीजिए ताकि जवानी की दुश्वारियां दोबारा आपको बर्बाद न करें और आप इस अंधकारपूर्ण घाटी से कुशलतापूर्वक गुजर जायें. सोचिये कि गर्मोसर्द जमाने के इतने अनुभव के बाद अगर आप चरित्र-रक्षण में नौजवानों की दुनिया के लिए नमूना न बन सके तो कितने शर्म की बात होगी."

डाक्टर साहब का यह उपदेश सुनकर इन लोगों के चेहरों पर हल्की-सी

प्रेमचंद के दो पत्र जैनेंद्र कुमार के नाम

सरस्वती प्रेस,
17 जनवरी, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

आशीर्वाद! तुम्हारे दोनों पत्र मिले. उसके दो दिन पहले मैंने एक कहानी 'भारत' के लिए लिखी थी. बड़ी मनहूस कहानी निकली. कुछ इसी तरह का उसका विषय था.

बच्चा चला गया. खत पढ़ते ही पहले तो कलेजा सन्न हो गया, लेकिन फिर मन शांत हो गया. यही जीवन के कड़वे अनुभव हैं. इन्हें झेले जाओ तो सब-कुछ सरल हो जाता है. फिर रोयें भी तो किसके सामने? कौन देखनेवाला है? किसी को अपना समझें क्यों? अपना केवल इतने ही के लिए समझो कि उसके हमारे कर्तव्य हैं. ज्ञान-वान तो मैं जानता नहीं. ऐसे आघातों से कलेजे पर घाव लगता ही है. लेकिन लगना चाहिए नहीं. तुम रोये नहीं, इससे मेरा चित्त बहुत शांत हुआ. तुम यहां होते तो तुम्हारी पीठ ठोंकता. यही तो परीक्षा के अवसर हैं.

भगवती और माताजी को बहुत समझाना. देवियों का हृदय कोमल होता है. बच्चा उनके अंग का एक भाग-सा था. होते ही उसकी झगड़ों में लग जाती थीं. अब उन्हें कितना सूना-सूना लगता होगा. माताजी ने दुनिया के सुख-दुःख देखे हैं. उनको मैं क्या समझाऊं! लेकिन भगवती से कहूंगा धैर्य से काम लो. बच्चे को तुमने पाला-पोसा, फिर भी वह तुमसे रूठ कर चला गया. उसकी स्मृति क्या उससे कम प्यारी है! मैं तो समझता हूं वह और भी प्यारा हो गया है; समझो कि वह तुम्हारी गोद में खेल रहा है. बल्कि तुम्हारे हृदय के अंदर है. कहीं गया नहीं, भीतर जो बैठा है, अब बाहर की गर्मी, सर्दी, रोग, व्याधि का इस पर कुछ असर न होगा. फिर क्यों रोते हो?

चतुर्वेदी भी आये थे. दो दिन खूब बातें हुई. प्रसादजी से भी भेंट हुई. मैं समझता हूं उनमें बहुत-कुछ सफाई हो गयी है. कहानी के विषय में मेरी उनसे बातचीत हुई, मैंने उन्हें समझाने की चेष्टा की. वह अपनी तरफ से अड़े रहे. लेकिन उसे इधर-उधर भेजकर एक झगड़ा खड़ा करना उन्हें भी पसंद नहीं है...

चैक से बीस रुपये भेजता हूं. रुपये मंगवाने में डाक का समय निकल गया.

अभी शिवपूजन सहायजी घर से नहीं लौटे. आते ही कहानी ले लूंगा. सुदर्शनजी एक फिल्म कंपनी में छः सौ रुपये पर नौकर हो गये. और तो सब कुशल है.

तुम्हारा
धनपतराय

सरस्वती प्रेस,
4, 1933

प्रिय जैनेंद्र,

मैंने कई दिनों से तुम्हें पत्र नहीं लिखा कोई बात लिखने की ऐसी थी भी नहीं. तुम्हारा लेख शिवपूजन सहायजी से मिल गया और छप भी गया, मगर है बहुत नन्हा-सा. मेरा लेख भी इतना ही बड़ा होगा.

तुम्हारा उपन्यास चल रहा है, या आराम करने लगा? मैं समझता हूं, अब तुम हर तरह से स्वस्थ हो.

तीन-चार दिन इलाहाबाद रहा और (वहां) तुम्हारी खूब चर्चा रही. इंडियन प्रेसवाले तुम्हें पत्र लिखेंगे.

धुन्नू की अम्मां की किताब को भूलना नहीं. तुम्हारा (लिख देना) ही उन्हें आसमान पर चढ़ा देगा.

और तो नयी बात नहीं.

तुम्हारा
धनपतराय

तुम अपना तौलिया यहां छोड़ गये जिससे बंदा देह पोंछता है.

मुस्कराहट उभर आयी. उन्होंने उसका कुछ जवाब न दिया. यह हास्यास्पद खयाल सुना तो जवानी की गलत कारियों और बेपर्वा और उच्छृंखल काम करने वालों के ऐसे कड़ुवे अनुभवों के बाद ये लोग फिर जान-बूझकर उनमें गिरफ्तार होंगे.

डाक्टर साहब ने कृपापूर्वक कहा, "अब आप लोग इसे शौक से पियें. मुझे बहुत खुशी है कि मुझे अपने प्रयोग के लिए आप जैसे लायक आदमी मिल गये."

दुर्बल हाथों से इन चारों आदमियों ने गिलास को उठाकर होंठों से लगाया. अगर वास्तव में डाक्टर साहब के खयाल के मुताबिक इस पानी में जांबख्श असर था तो इन आदमियों से ज्यादा दुनिया में शायद ही किसी को इसकी जरूरत होगी. इनके चेहरों से ऐसा गुमान होता था कि उन्होंने जवानी की सूरत ही नहीं देखी और जन्मजात बूढ़े थे. गोया वे हमेशा से ऐसे ही खस्ता, मायूस और सफेद हो रहे थे. यह लोग डाक्टर साहब की मेज के चारों तरफ झुके हुए बैठे थे. आने वाली जवानी की खुशी भी उनके चेहरों पर रौनक न पैदा कर सकती थी. उनके जिस्म और दिल बिलकुल बेजान हो गये थे. पानी पीकर उन्होंने गिलास मेज पर रख दिये.

मगर एक क्षण में उन लोगों की हालत में एक खुशगवार तब्दीली नमूदार हुई. उनके चेहरे रौशन हो गये. रौनक नजर आने लगी. उनके जर्द और बेरंग होंठों पर सुर्खी पैदा हो गयी. उन्होंने एक-दूसरे की तरफ देखा. उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि अचानक कोई विद्युतीय शक्ति उनके जिस्म से इन चिह्नों को मिटा रही है, जिन्हें बेरहम जमाना अर्सेदराज से नक्श करता रहा है. श्रीमती चंचल कुंवर को ऐसा महसूस हुआ कि मुझ पर फिर जोबन आ रहा है. उसने एक अंदाज से चेहरे पर घूंघट बढ़ा लिया.

सब लोग खुश होकर बोले, "थोड़ा-सा आबे-हयात और दे दीजिये. हम कुछ जवान जरूर हो गये हैं लेकिन अभी कुछ कसर है. लाइये, जल्द एक गिलास और पिलाइये."

डाक्टर घोष, जो बैठे हुए अपने तजुरबे को आलिमाना दिलचस्पी के अंदाज से देख रहे थे, बोले, "जरा सब्र कीजिये. आप लोगों को बूढ़ा होने में बहुत दिन लगे थे. अगर जवान होने में आध घंटा लग जाये तो आपको बेसब्र नहीं होना चाहिए. यह पानी हाजिर है, आप लोग जितना चाहें पी सकते हैं."

यह कहकर डॉक्टर साहब ने चारों गिलासों को दुबारा भरा. घड़े में अब भी इतना पानी बाकी था कि शहर के आधे बूढ़े अपने नाती-पोतों के हम उम्र हो सकते थे. अभी गिलासों में बुलबुले उठ ही रहे थे कि चारों आदमियों ने झपटकर मेज पर से गिलास उठा लिये और एक ही घूंट में खाली कर दिये. यकीनन यह आबे हयात था. अभी पानी उन लोगों के हलक से उतरा ही था कि उनकी सूरत में इनकलाब पैदा होने लगा. उनकी आंखों में जवानी की-सी चमक आ गयी. सफेद बाल काले होने लगे. एक क्षण और गुजरा मेज के गिर्द चार बूढ़ों की जगह तीन नौजवान मर्द बैठे थे और एक गुलबदन हसीना. ठाकुर विक्रमसिंह ने चंचल कुंवर की तरफ मस्त निगाह से देखकर कहा, "प्यारी चंचल, तुम पर इस वक्त गजब का निखार है."

सुबह होने पर जिस तरह अंधेरा हटने लगता है उसी तरह चंचल कुंवर का चेहरा शगुफ्ता होता जाता था. उसे पुराना तजुरबा था कि ठाकुर साहब की तारीफें हमेशा सच्ची नहीं होतीं. इसलिए वह दौड़ी हुई आईने के सामने गयी और उसमें अपनी सूरत देखने लगी. उसे अब भी डर था कि कहीं बुढ़ापे की घृणित सूरत न नजर आये. बाकी तीनों आदमियों के अंदाज से ऐसा मालूम होता था कि इस पानी में कुछ नशाअंगेज सिफत है. शायद इसका यह ही सबब हो कि बुढ़ापे का बोझ सिर से उतर जाने के बाइस खुशी के मारे मतवाले हो गये थे. बाबू दयाराम मुल्की समस्याओं पर गौर कर रहे थे, लेकिन उन समस्याओं का संबंध वर्तमान से था या अतीत या भविष्य से, इसका पता लगाना मुश्किल था. कभी तो वह जोर-जोर से देशभक्ति; देश सेवा या मानवीय अधिकार पर तकरीर करने लगते. कभी किसी सूफिया मामले के संबंध में ऐसी दबी जबान से चुपके से कहते कि उन्हें अपनी ही

आवाज न सुनाई देती थी और कभी रुक-रुककर बहुत ही नम्र होकर बोलने लगते जैसे किसी उच्चाधिकारी के सामने बोल रहे हों. ठाकुर विक्रम सिंह भी कोई चलती हुई चीज गुनगुना रहे थे और गिलास पर अंगुलियों से ताल भी देते जाते थे. उनकी आंखें चंचल कुंवर के हसीन चेहरे की तरफ लगी हुई थीं. मेज की दूसरी तरफ सेठ करोड़ीमल रोकड़ और खाते की धुन में लीन थे और सोच रहे थे कि अगर हिमालय पहाड़ से बरफ के तोदे काट-काटकर लाये जायें तो कितना नफा हो, और चंचल कुंवर आईने के सामने खड़ी अपनी सूरत देख-देखकर खुशी से मुस्करा रही थी. रह-रहकर वह अपना चेहरा आईने के करीब लाकर यह देखने की कोशिश करती थी कि कोई पुराना दाग तो बाकी नहीं रहा. उन्हें अपने निखार पर अब भी पूरा इत्मीनान न हुआ. उन्हें याद आता था कि मैं जवानी में इससे ज्यादा हसीन थी. आखिर वह एक अंदाज से घूंघट उठाये हुए मेज के करीब आयी और बोली, ''डाक्टर साहब, बराहे करम, मुझे एक गिलास और दे दीजिए.''

डाक्टर घोष ने हंसकर कहा ''हां, हां, शौक से लीजिये, यह देखिए, मैं गिलास भरे देता हूं.''

आबे हयात से लबरेज गिलास मेज पर रखे हुए थे. उनसे निकलनेवाली महीन फुहारें हीरों के कणों की तरह चमक रही थीं. सूरज डूब चुका था. इसलिए कमरे में ज्यादा अंधकार हो गया था, लेकिन खुम में से चांदनी की हल्की-सी रोशनी निकलकर डाक्टर और उनके दोस्तों के चेहरों पर पड़ रही थी. डाक्टर साहब के चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियां और उसकी जर्दी इस रोशनी में और भी प्रकट हो रही थी.

तीसरा गिलास पीते ही इन चारों आदमियों की रगों में जवानी की उमंगें लहरें मारने लगीं. अब उनकी जवानी का उठान था. प्रसन्नता का आवेग उनके दिलों में न समाता था. मायूसी और बेकसी का बुढ़ापा अब उन्हें एक ख्वाब-सा मालूम होता था जिसे उन्होंने अर्सा हुआ देखा था. उन्हें अब हर एक चीज में एक खास रौनक नजर आने लगी. वह रूहानी शगुफ्तगी जिससे वे लोग समय से पहले ही वंचित हो चुके थे और जिसके बगैर दुनिया के दिलफरेब नजारे उन्हें धुंधली तस्वीरों की तरह नजर आते थे, फिर उन पर तमन्नाओं का जादू करने लगीं. उन्हें ऐसा मालूम होता था कि हम एक नयी दुनिया के नये अस्तित्व हैं. सबके सब झुककर बोले, ''हम जवान हो गये. हम जवान हो गये.'' सचमुच यह ओछे नौजवानों की एक जमात थी जिन्हें आयु की मांग ने दीवानगी की हद तक पहुंचा दिया था. उनकी इस प्रसन्नता का सबसे अजीब पक्ष यह था कि उन लोगों को इस वृद्धावस्था और निर्बलता की खिल्ली उड़ाने की दिली इच्छा हो रही थी, जिससे अभी-अभी उनको छुटकारा मिला था. वे अपने पुराने ढंग के कपड़ों को देखकर खूब कहकहे मारकर हंसने लगे. एक साहब ऋतु-परिवर्तन के दर्द से कराहते हुए बूढ़े बाबा की नकल करके लंगड़ा-लंगड़ाकर चलने लगे, दूसरे साहब नाक पर ऐनक रखकर जादू की किताब को गौर से पढ़ने का बहाना करने लगे. तीसरे साहब एक आरामकुर्सी पर बैठ गये और डाक्टर घोष की बुजुर्गाना दृढ़ता की नकल करने लगे. फिर सबके सब बगलें बजा-बजाकर कमरे में कूदने-फांदने लगे. श्रीमती चंचल कुंवर एक दिलरूबाना अंदाज से डाक्टर साहब के पास आयी. उनके गुलाब-से होंठों पर एक दिलफरेब और शराफत भरी शोखी थी. डाक्टर साहब से बोली, ''प्यारे डाक्टर, उठ खड़े हो, जरा मेरे साथ नाचो.'' इस पर चारों आदमियों ने यह सोचकर कहकहा मारा कि डाक्टर साहब इस हसीना के पहलू में कैसे मूर्ख मालूम होंगे.

डाक्टर साहब ने मतानत से कहा, ''मुझे माफ कीजिये. मैं बूढ़ा, गठिये ने नाक में दम कर रखा है. मेरे नाचने के दिन कब के रुखसत हो गये, लेकिन इन तीन नौजवानों में से कोई भी तुम्हारे साथ नाचने के लिए जान दे देगा.''

ठाकुरसिंह ने फर्माया, ''चंचल, मेरे साथ नाचो.''

बाबू दयाराम बोले, ''नहीं, वह मेरे साथ नाचेगी.''

लाला करोड़ीमल ने कहा, ''वाह, मैं इनका पुराना रफीक हूं. पचास साल हुए इन्होंने मेरे साथ नाचने का वायदा किया था.''

यह कहते-कहते तीनों आदमी चंचल कुंवर के गिर्द खड़े हो गये. एक ने बेताब होकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये. दूसरे ने उसकी कमर में हाथ डाल दिया और तीसरे साहब ने उसके सुगंधित केशों का बोसा लेना शुरू किया. चंचल कुंवर लजाती थी, त्यौरियां बदलती थी, कोसती थी, हंसती थी, तड़फड़ाती थी. उसकी गर्म-गर्म सांस बारी-बारी से उन तीनों आदमियों के मुंह पर वह काम कर रही थी जो ठंडी हवा नशा करती है. वह उनके बीच से निकलने के लिए जोर कर रही थी, लेकिन कुछ बस न चलता था. एक मायावी प्रेमिका के साथ के लिए ऐसी सरगर्म मैत्रीपूर्ण खींचातानी का नजारा किसी ने कम देखा होगा. मगर कमरे में रखे हुए आदमकद शीशे में कुछ और ही माजरा नजर आता था. वहां तीन वयोवृद्ध और खस्ताहाल बूढ़े एक झुकी हुई कमर की घृणित और झुर्रीदार बुढ़िया से हमआगोश होने के लिए गले में हाथ डाले थे.

लेकिन वे नौजवान थे. उनकी मस्ती इसका सबूत थी. चंचल कुंवर की भाव भंगिमा और परहेज से बेसुद होकर तीनों रकीबों ने कुपित दृष्टि डालनी शुरू कीं. हसीन माशूका से चिपटे हुए वे एक-दूसरे पर पिल पड़े. हाथापाई और धौल-धप्पा शुरू हुआ. इस झमेले में मेज को ठोकर लगी और वह उलट गयी. शीशे का खुम गिरकर चूर-चूर हो गया और वह आबे-जिंदगी एक चमकीले धार की सूरत में फर्श पर बह निकला. एक अधमरी तितली जमीन पर पड़ी सिसक रही थी. उसके पर इस धार से तर हो गये. वह फर्र से उड़कर डाक्टर घोष की टोपी पर जा बैठी. डाक्टर घोष बोले, ''बस-बस, यारो, बस. चंचल कुंवर, बस. अब बहुत हुआ. मुझे यह हंगामा कतई पसंद नहीं.'' वे सब के सब खामोश हो गये. उन्हें लरजा-सा आ गया. उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि बहुत वृद्ध जमाना हमें जवानी के इस हरियाले से फिर अंधेरी घाटी की तरफ खींचे लिये जाता है. उन्होंने डाक्टर घोष की तरफ देखा. वह उस पचास साला फूल को लिये यथापूर्व बैठे थे, जिसे उन्होंने खुम के टुकड़े में से निकाल लिया था. उनके हाथों का इशारा पाते ही चारों उमंग की शराब के मतवाले अपनी अपनी जगहों पर आ बैठे. हालांकि वे जवान थे, पर इस कशमकश और मूर्खतापूर्ण उन्माद ने उन्हें बेदम कर दिया था.

डाक्टर घोष ने फूल को सूर्य की लालिमा में देखकर कहा, ''अफसोस, यह फूल फिर मुरझाया जाता है.'' यह बिलकुल सही था. इन लोगों के देखते-देखते फूल ऐसा खुश्क और चुरमुरा हो गया, जैसा खुम में डालते वक्त था. डाक्टर ने उसकी पंखुड़ियों पर लगी हुई पानी की बूंदों को हिलाकर गिरा दिया और उसे अपने सूखे हुए होंठों से लगाकर बोले, ''मेरे लिए यह अब भी ताजा और शगुफ्ता है.'' डाक्टर साहब के मुंह से यह अल्फाज निकल रहे थे कि तितली फड़फड़ायी और उनके सिर पर से जमीन पर गिर पड़ी.

डाक्टर साहब के दोस्तों के जिस्म में फिर कंपन हुआ. एक अजीब किस्म की शीतलता मालूम नहीं उनके जिस्म या दिल पर दौड़ती चली जाती थी. वे एक दूसरे की तरफ ताक रहे थे. उन्हें ऐसा लगता था कि हर एक लम्हा उनके यौवन-पुष्प को तोड़कर उसकी जगह एक एक दाग छोड़ता चला जाता था. क्या यह बिलकुल दृष्टिभ्रम था? क्या आयु-सीमा की तब्दीलियां इतने मुख्तसर लम्हों में समेट दी गयी थीं? और वे सबके सब चार कुहनसाल बूढ़े थे जो अपने पुराने दोस्त डाक्टर घोष के साथ बैठे थे. इन लोगों ने मायूसाना लहजे में कहा, ''क्या हम फिर इतनी जल्दी बूढ़े हो गये?''

हां, उनका शबाब रुखसत हो चुका था. इस आबे-हयात में शराब के नशे से भी अधिक प्रभाव था. इससे पैदा होने वाले प्रभाव सिर्फ भयग्रस्त हो चुके थे. बुढ़ापे ने फिर उन पर अपना सियाह लबादा डाल दिया था. चंचल कुंवर ने विवशता की दशा में अपना चेहरा जुड़ी उंगलियों से ढक लिया.

एक लम्हे की खामोशी के बाद डाक्टर घोष ने फर्माया, ''दोस्तो, अफसोस है कि आप फिर बूढ़े हो गये. देखिए, आबे-हयात से जमीन तर हो गयी है, लेकिन अब मुझे इसका मुतलक गम नहीं, क्योंकि अगर अमृत धारा मेरे दरवाजे ही पर लहरें मारे तो भी मैं उससे अपने होंठ न तर करूं चाहे लम्हों के बदले उसका नशा बरसों तक क्यों न कायम रहे. आप लोगों से आज मुझे भी शिक्षा हासिल हुई है.'' लेकिन डाक्टर साहब के दोस्तों को यह सीख न मिली. उन्होंने चश्मे हयात के सफर का पक्का इरादा किया, जहां वह सुबह-दोपहर-शाम इच्छानुसार आबे-हयात नोश करें और सदाबहार जवानी का लुत्फ उठायें. □

प्रेमचंद, प्रेस और प्रवासीलाल वर्मा

प्रस्तुति : कमल किशोर गोयनका

प्रेमचंद द्वारा स्थापित सरस्वती प्रेस, 'हंस' तथा 'जागरण' पत्रिकाओं तथा पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय से जिस व्यक्ति का सबसे घनिष्ठ संबंध रहा, वह प्रवासी लाल वर्मा 'मालवीय' थे.

प्रवासीलाल वर्मा 'मालवीय' ने अगस्त, 1928 को सरस्वती प्रेस के मैनेजर के रूप में कार्यभार ग्रहण किया और वेतन, साझा आदि की सभी शर्तें तय हुईं. इसके पश्चात् 'हंस' तथा 'जागरण' के प्रकाशन तथा पुस्तकों के मुद्रण तथा बिक्री में भी उनका महत्वपूर्ण सहयोग रहा. प्रेमचंद अगस्त, 1928 से जनवरी, 1936 तक काफी समय बनारस से बाहर रहे और इस बीच प्रेस का संपूर्ण दायित्व प्रवासीलाल पर ही रहा. सरस्वती प्रेस में जिन दिनों हड़ताल हुई, तब प्रेमचंद बंबई में थे. प्रवासीलाल वर्मा ने ही इसका सामना किया और कर्मचारी संघ से समझौता किया. प्रेमचंद का पूर्ण विश्वास उन्हें मिला, लेकिन हंस, 'जागरण' आदि के घाटे से कुछ ऐसी स्थिति पैदा हुई कि प्रेमचंद ने 1936 में प्रवासीलाल को नौकरी से निकाल दिया और साझेदारी के संबंध तोड़ लिये.

प्रवासी लाल वर्मा ने इस पर प्रेमचंद के साथ पत्र-व्यवहार किया, किंतु समझौता नहीं हो सका. प्रेमचंद उन पर गबन का आरोप लगा रहे थे, और प्रवासीलाल उसे 'जागरण' के लिए काम करने का वेतन मान रहे थे. इस पर दोनों ने सहमत होकर बा.वि. पराड़कर तथा लहरी प्रेस के मालिक दुर्गाप्रसाद खत्री को पंच बनाया और दोनों ने पंचों को अपना-अपना हिसाब प्रस्तुत किया. इस पर भी प्रवासीलाल तथा प्रेमचंद में समझौता नहीं हुआ. तब प्रवासीलाल ने हिंदी साहित्यकारों से समझौता कराने की अपील की और महात्मा गांधी को भी पत्र लिखा. इस बीच प्रेमचंद का देहांत हो गया, लेकिन प्रवासीलाल ने 11 नवंबर, 1936 को अपने वकील ब्रजकिशन दास के माध्यम से प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय को नोटिस दे दिया, जिसका उत्तर श्रीपतराय ने 18 नवंबर, 1936 को दिया.

अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचंद की जीवनी 'प्रेमचंद-कलम का सिपाही' में इस प्रसंग की न केवल कोई चर्चा ही नहीं है, बल्कि प्रवासीलाल वर्मा 'मालवीय' का यत्र-तत्र कहीं उल्लेख नहीं है. यहां प्रेमचंद द्वारा प्रवासीलाल वर्मा 'मालवीय' को लिखे पत्र में से कुछ पत्रों के अंश प्रस्तुत हैं, जिससे पाठक इस प्रसंग की कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें. प्रेमचंद पर शोध कार्य करते हुए जो नयी सामग्री उपलब्ध हुई, उसी में से यह पत्र प्रस्तुत हैं.
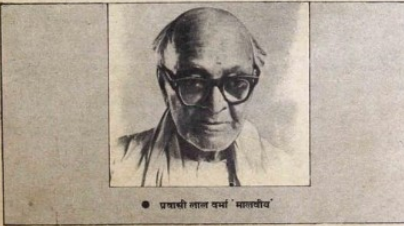
● प्रवासी लाल वर्मा 'मालवीय'
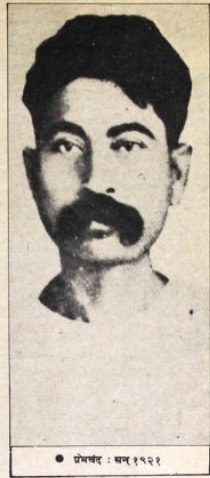
● प्रेमचंद : सन् १९२१

माधुरी आफिस
लखनऊ
13.8.28

प्रिय प्रवासीलाल जी,

बंदे.

इधर मैं आपको पत्र न लिख सका. हमारे और आप के बीच में अब सारी बातें तय हो चुकीं–

1. आप प्रेस के मैनेजर होंगे. रुपये का सूद और घिसाई और आपका 50 रुपये वेतन निकाल कर जो कुछ बचे उसमें 1/3 आप का और 2/3 प्रेस के हिस्सेदारों का.

2. प्रकाशन में सब खर्च-विज्ञापन, पुरस्कार, छपाई विज्ञापन आदि निकालकर ½ हमारा और ½ आपका.

3. प्रेस के लिए आपके उद्योग से इतना काम मिलेगा कि सब खर्च निकलेगा. हम 3 महीने तक आप को 50 रुपये मासिक अपने पास से देंगे और इस बीच में आपको काम का प्रबंध करना पड़ेगा.

4. आपका नाम प्रिंटर में लिख जायेगा.

5. गुरुराम जी प्रूफ रीडर रहेंगे.

आशा है, आप सानंद हैं. ऐसी कोई पुस्तक लिखिए जिसमें साहस और वीरता का वृत्तांत हो, या ऐसा जिसमें जंगली जानवरों के शिकारों की

घटनाएं हों. ऐसी पुस्तकें शायद अधिक खपें.
शेष कुशल

भवदीय
धनपतराय

नवल किशोर प्रेस (बुक डिपो)
लखनऊ
21.8.1928

प्रिय प्रवासीलाल जी,

पत्र के लिये धन्यवाद. आप प्रेस में काम करने को तैयार हो गये. बड़े हर्ष की बात है. विज्ञापन और क्रोड पत्र जो चाहें छपवाइए. विज्ञापन ऐसे पत्रों में छपवाइए जिन्हें कोई बड़ी रकम न देनी पड़े. मेरे नाम का भली भांति उपयोग कीजिए. 'कर्मवीर', 'प्रताप', 'संवेदना गोरखपुर' 'मतवाला' आदि पत्रों में अवश्य आपको रियायती दर मिल जायेगा. क्रोड पत्र भी सस्ते में बांट देंगे.

बहरहाल प्रेस की सफलता इसी पर मुनहसर है कि अगले दो-तीन महीनों में प्रेस में दो फार्म का काम रोज होने लगे और जाब वर्क भी खूब आने लगे. और सब कुशल है.

भवदीय
प्रेमचंद

22.5.35
(स्थान अंकित नहीं)

बंधुवर,

मैं जल्दबाजी नहीं कर रहा हूं. पांच-छः महीने से विचार कर रहा हूं. यहां 8 साल तक आपने जी जान से काम किया, मगर उसका जो नतीजा निकलना चाहिए, वह न निकला. आप को ही क्या' फायदा हुआ. किसी तरह जीवन व्यतीत हुआ. मैं तो यह सारा झंझट इसीलिये कर रहा हूं कि हम और आप दोनों जीविका की फिक्र से मुक्त हो जायें. आखिर आदमी स्टाक ही तो नहीं बढ़ाना चाहता, पैसे चाहता है जिससे उसकी गृहस्ती चले. इसलिए अच्छे भविष्य की आशा में एक बार उद्योग करना पड़ेगा. अगर प्रयाग में भी यही दशा रही तो आप स्वयं यही निश्चय करेंगे कि इस खटखट को बंद कीजिए.

आपका
ध. राय

संभवतः दिसंबर, 1935

बंधुवर,

मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझसे पिछला हिसाब क्या देखना चाहते हैं? आप उसे देखिए. मैं उसे देख चुका. लेना-देना तो आप इस तरह कहते हैं कि गोया मुझे भी कुछ देना है. आपने अभी तक परिस्थिति को शांत मन से नहीं समझने की चेष्टा की और लेने देने के फेर में पड़े हुए हैं. प्रश्न है कि हिसाब सही है या गलत? अगर गलत है तो गलत हिसाब लिखने का जाल क्यों किया गया? सही है तो रुपये रहते हुए मकान के किराए की डिग्री क्यों करायी गयी, कागज की डिग्री क्यों करायी गयी, हड़ताल क्यों कराया गया? मेरी बदनामी क्यों करायी गयी है.

हंस निकला, जागरण निकला. प्रेस के, मेरे और आप के लाभ के लिए. एक भी न चला. तो वह नुकसान मेरे ही ऊपर क्यों डाला जाये? मैंने माना, आपने प्रेस को 3000 रुपये दिये. प्रेस की घिसाई भी तो कुछ हुई. आज आप के पास केवल वही टाइप है जो मेरे सामने आया. दूसरा टाइप नहीं. मशीन में 200 रुपये खर्च होंगे तब चलेगी. घिस-घिसकर बेकार हो गयी. केवल ट्रेडल नयी आयी. बार्डर वगैरा आपने कितने का मंगाया है, यह मैं नहीं जानता. मुझे सूद कुछ मिलना चाहिए या नहीं. पुस्तकों की आमदनी कुछ मिलनी चाहिए या नहीं. यह सब हंस और जागरण खा गये. आप का इससे कोई संबंध नहीं था, यही सही. मगर यह तो आपको मालूम था कि जो आदमी 7 साल से बराबर पत्र निकाल रहा है, पुस्तकें लिख-लिख दे रहा है, वह किसलिए? इसीलिए कि हंस निकाला जाये? हंस निकालना ही उसका उद्देश्य है? यह सब हम दोनों के नफे के ख्याल से निकला.

मैंने आपकी मनोवृत्ति जैसी समझी है वह स्वार्थपरता की ओर झुकी हुई मालूम होती है. मालिक को धेला न मिले, वह पत्र में भी लिखे पुस्तकें भी लिखे. अपने पास से रुपये भी दे, फिर भी आप इस खयाल में खुश रहें कि नफा हुआ है और हजार पांच सौ रुपये खर्च करने का आपको अधिकार है. मैं इस अधिकार को स्वीकार नहीं करता हूं. हमारे आपके बीच में शर्त थी कि प्रेस की लागत का सूद निकालकर प्रकाशन पर रायल्टी देकर जो कुछ बचे उसमें आधा-आधा. इसमें कोई भूल तो नहीं है? तो–

1. आपने अब तक क्या लिया इसका हिसाब लगाइए.
2. मैंने क्या लिया?
3. मैंने प्रेस को क्या दिया?
4. स्टाक कितने का है?
5. प्रेस के जिम्मे क्या बाकी है?
6. प्रेस को कितना पाना है?

यह साफ करके आपका जो कुछ निकले ले लीजिए, मेरा जो कुछ निकले दे दीजिए और झगड़ा खत्म.

आपका
धनपतराय

11.1.1936

दि हंस लिमिटेड
एडीटर्स
प्रेमचंद एंड
कन्हैयालाल मुंशी

प्रियवर,

मैं आज प्रयाग जाता हूं, 14 को लौटूंगा. तब तक आप हिसाब-किताब कर रखिए. मैं इस रोज-रोज की लिखा-पढ़ी से तंग आ गया हूं. बंटवारे के सिवा कोई उपाय नहीं है.

अगर आप इस पर राजी न हों तो पंचायत कर लीजिए. जिसे चाहे पंच बना लीजिए. उसके सामने अपना हिसाब रख दीजिए, जो वह दिला दे वह आप भी लेकर खुश हो जाइए. मैं भी.

भवदीय
धनपतराय

दुर्गाप्रसाद खत्री के नाम

24.4.1936

प्रिय दुर्गाप्रसाद जी,

आज्ञानुसार प्रेस की हानि लाभ का चिट्ठा भेज रहा हूं. एक में प्रवासीलाल जी को चार्ज देते समय की कुल मालियत दर्ज है. दूसरे में उनसे चार्ज लेते समय की कुल मालियत का ब्यौरा दिया गया है. यह सब मैंने यादाश्त से लिखा है. संभव है, कुछ भूल हो. मसलन टाइपराइटर का दाम मैंने कुछ नहीं लगाया, क्योंकि वह अब बेकार पड़ा हुआ है और मुझे कोई 50 रुपये भी दे तो दे दूंगा. इसी तरह हाट प्रेस की कीमत भी इस वक्त 25-30 रुपये से ज्यादा न होगी. टाइप की घिसाई मैंने कुछ नहीं लगायी, क्योंकि वही मेटल फिर से ढलवा लिया गया. मशीन की मरम्मत या दो चार कुरसियां और फर्निचर जरूर बढ़े हैं, मगर उनकी मौजूदा कीमत शायद 50 रुपये भी न होगी. अगर यह सब भी जोड़ लिया जाये, तो भी ज्यादा से ज्यादा 500 रुपये का होगा. मगर मैंने वह रकम भी छोड़ दी है, अर्थात् 900 रुपये जो प्रवासीलाल जी ने गबन कर लिया है. इस तरह मैंने दोनों तरफ से न्याय करने की कोशिश की है. रहा प्रेस का 8 साल की आमदनी का खर्च का हिसाब, वह इस मुआमले को समझने के लिए जरूरी नहीं मालूम होता. प्रेस में आमदनी कम हुई, पुस्तकें बेचकर किसी तरह काम चलाया गया. मैनेजर ने केवल अपने वेतन का खयाल किया, मालिक को क्या मिलता है, उसका कोई विचार नहीं किया. अगर वह काम ज्यादा लाते, प्रेस को नफे पर चलाते, तो यह हालत ही क्यों पैदा होती. जब मैंने देखा कि 8 साल में मुझे 10, 12 हजार का नुकसान देकर यह महाशय 1000 रुपये गबन कर लेते हैं और इस पर कहते हैं कि यह तो मैंने 'जागरण' में अधिक काम करने के लिए ले लिया! हालांकि मुझे इसकी बिलकुल खबर नहीं, तो मेरे लिए इसके सिवा और क्या उपाय था कि उन्हें अलग कर दूं. किसी तरह भी हर प्रकार की रिआयत करने पर भी हानि दस हजार से कम नहीं हुई है.

भवदीय
धनपतराय

अगर प्रवासीलाल जी को पुस्तकों के ब्यौरे में कुछ संदेह हो, तो वह जांच कर सकते हैं. □

● प्रेमचंद की कहानियां : तीन

खबर मिली थी कि बाबू भगीरथ प्रसाद के घर गमी हुई है पर बताने वाले ने यह नहीं बताया कि मौत दरअसल किसकी हुई है. और जब इस रहस्य पर से परदा हटा तो लोग रोने के बजाय हंसने लगे.

मुझे जब कोई काम–जैसे बच्चों को खिलाना, ताश खेलना, हारमोनियम बजाना, सड़क पर आने-जाने वालों को देखना–नहीं होता तो अखबार उलट लिया करता हूं. अखबार में पहले उन मुकद्दमों को देखता हूं, जिनमें किसी स्त्री की चर्चा होती है–जैसे आशनाई के, या भगा ले जाने के, या तलाक के या बलात्कार के. विशेषकर बलात्कार के मुकद्दमे मैं बड़े शौक से पढ़ता हूं, तन्मय हो जाता हूं.

कल संयोग से अखबार में ऐसा ही एक मुकद्दमा मिल गया. मैं संभल गया. ताबेदार से चिलम भरवा दी और घड़ी-दो घड़ी असीम आनंद की कल्पना करके खबर पढ़ने लगा.

यकायक किसी ने पुकारा, "बाबूजी...?" मुझे यह 'मुदाखलत बेजा' बुरी तो लगी, लेकिन कभी-कभी इसी तरह निमंत्रण भी आ जाया करते हैं, इसलिए मैंने कमरे के बाहर आकर आदमी से पूछा, "क्या काम है मुझसे? कहां से आया है?"

उस आदमी के हाथ में न कोई निमंत्रण-पत्र था, न निमंत्रित सज्जनों की नामावली. इससे मेरा क्रोध और दहक उठा. मैंने अंग्रेजी में दो-चार गालियां दीं और उसके जवाब की अपेक्षा करने लगा.

आदमी ने कहा, "बाबू भगीरथ प्रसाद के घर से आया हूं. उनके घर में गमी हो गयी है."

मैंने चिंतित होकर पूछा, "कौन मर गया है?"

आदमी, "हुजूर, यह तो मुझे नहीं मालूम. बस इतना ही कहा है कि गमी की सूचना दे आ."

यह कहकर वह चलता बना और मेरे मन में भ्रांति का एक तूफान छोड़ गया–कौन मर गया? स्त्री तो बीमार न थी, न कोई बच्चा ही बीमार था. फिर कौन गया? अच्छा, समझ गया. स्त्री के बाल-बच्चा होने वाला था. उसीमें कुछ गोलमाल हो गया होगा. बेचारी मर गयी होगी. घर उजड़ गया. कई छोटे-छोटे बच्चे हैं. कौन उन्हें पालेगा? और तो और, इस जाड़े-पाले में नदी जाना और वह भी नंगे पैर और रात को नदी में स्नान. उसकी मृत्यु क्या हुई, हमारी मृत्यु हुई. यहां तो हवा जुकाम हुआ करती है, रात को नहाना तो मौत के मुंह में जाना है.

इस सोच में, मैं कई मिनट मूक बना खड़ा रहा. फिर घर में जाकर कपड़े उतारे, धोती ली और नंगे पांव चला. भागीरथ प्रसाद के घर पहुंचा तो चिराग जल गये थे. द्वार पर कई आदमी मेरी ही तरह धोतियां लिये एक तख्त पर बैठे हुए थे.

मैंने पूछा, "आप लोगों को तो मालूम होगा कौन मर गया है?" एक महाशय बोले, "जी नहीं. नाई ने तो इतना ही कहा था कि गमी हो गयी है. शायद स्त्री का देहांत हो गया है. भागीरथ लाल को बुलाना चाहिए. देर क्यों कर रहे हैं? मालूम नहीं कफन मंगवा लिया है या नहीं. अभी तो कहीं बांस-फांस का भी पता नहीं. सारी रात मरना है."

मैंने द्वार पर जाकर पुकारा, "कहां हो भाई, क्या हम लोग अंदर आ जायें? चारपाई से तो उतार लिया है न?"

भागीरथ प्रसाद एक मिनिट में पान और इलायची की तश्तरी लिये, फलालेन का कुरता पहने, पान खाते हुए बाहर निकले. बाहर बैठी हुई शोक-मंडली उन्हें देखकर चकित हो गयी. यह बात क्या है? न लाश, न कफन, न रोना, न पीटना...यह कैसी गमी है. आखिर मैंने डरते-डरते कहा, "कौन-यानी किसके विषय में...यही आदमी जो आपने भेजा था...? तो क्या देर है?" भागीरथ ने कुर्सी पर बैठकर कहा, "पहले आराम से बैठिये, पान खाइये, तब यह बात भी होगी. मैं आपका मतलब समझ गया. बात सोलहों आने ठीक है."

"तो फिर जल्दी कीजिये, रात हो ही गयी है. कौन है?" भागीरथ ने अब की गंभीर होकर कहा, "वही, जो सबसे प्यारा, मेरा मित्र, मेरे जीवन का आधार, मेरा सर्वस्व, बेटे से भी प्यारा, स्त्री से भी निकट, मेरे 'आनंद' की मृत्यु हो गयी. एक बालक का जन्म हुआ, पर मैं इसे आनंद का विषय नहीं, शोक की बात समझता हूं. आप लोग जानते हैं मेरे दो बालक मौजूद हैं. उन्हीं का पालन मैं अच्छी तरह नहीं कर सकता. दूध भी कभी नहीं पिला सकता फिर इस तीसरे बालक के जन्म पर मैं आनंद कैसे मनाऊं! इसने मेरे सुख और शान्ति में बड़ी भारी बाधा डाल दी. मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि इसके लिए दाई रख सकूं. मां इसको खेलाये, उसका पालन करे या घर के दूसरे काम करे? फर्ज यह होगा कि मुझे सब काम छोड़कर इसकी सुश्रुषा करनी पड़ेगी. दस-पांच मिनट जो मनोरंजन या सैर में जाते थे अब इसकी सत्कार की भेंट होंगे. मैं इसे विपत्ति समझता हूं, और इसीलिए इस जन्म को गमी कहता हूं. आप लोगों को कष्ट हुआ. क्षमा कीजिये. आप लोग गंगा-स्नान के लिए तैयार होकर आये. चलिये, मैं भी चलता हूं. अगर शव को कंधे पर रखकर चलना ही अभीष्ट हो तो मेरे ताश और चौसर को लेते चलिये. इन्हें चिता में जला देंगे. वहां मैं गंगाजल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करूंगा कि अब ऐसी महान मूर्खता फिर न करूंगा.

हम लोगों ने खूब कहकहे मारे, दावत खायी और घर चले आये.

पर भागीरथ प्रसाद का कथन अभी तक मेरे कानों में गूंज रहा है. □

मुक्ति के रास्ते का उपदेश उन्होंने अंत तक दिया

दुलारे लाल भार्गव, ऋषभ चरण जैन, प्रेमचंद और चतुरसेन शास्त्री : दिल्ली यात्रा के दौरान

प्रेमचंद के संबंध में हिंदी के कुछ समीक्षकों ने यह धारणा फैलायी कि उनके समकालीन समीक्षकों ने उनकी उपेक्षा की और उनका अवमूल्यन किया. यह धारणा उपलब्ध तथ्यों से ठीक विपरीत है. प्रेमचंदकालीन पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य साहित्यिक सामग्री से यह सिद्ध होता है कि उर्दू से हिंदी में आने पर हिंदी विद्वानों और समीक्षकों ने उनका इतना भव्य स्वागत किया कि उन्हें रवींद्रनाथ ठाकुर, टालस्टॉय, थैकरे, गोर्की आदि के समतुल्य घोषित किया. प्रेमचंद का कहानी-संग्रह तथा उपन्यास प्रकाशित होने पर हिंदी संसार में एक हलचल होती थी और पत्र-पत्रिकाएं तत्काल उन पर समीक्षाएं प्रकाशित करती थीं. अनेक बार इस समीक्षाओं से सहमति-असहमति का सिलसिला भी चलता रहता था. समकालीन समीक्षा के यहां प्रस्तुत कुछ अंशों से यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद के समकालीन समीक्षकों ने उनकी रचनाओं को गंभीरता से ग्रहण किया और उन्हें युग निर्माता, कथा-सम्राट तथा हिंदी का सर्वश्रेष्ठ कथा-लेखक के रूप में स्थापित किया. वास्तव में प्रेमचंद की समकालीन समीक्षा की यह उपलब्धि है कि उसने प्रेमचंद की मौलिकता, सार्थकता तथा श्रेष्ठता को पहचाना और उससे पाठकों को अवगत कराया.

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

हमारी समझ में प्रेमचंद जी की विशेषता यह है कि उनके सभी पात्र मनुष्य होते हैं. न तो उनमें कोई अद्‌भुतकर्मा संन्यासी होता है और न कोई दिव्य-शक्ति संपन्न महात्मा रहता है. अधिकांश लेखक अपनी सम्मति को सर्वोपरि मानकर एक निश्चित आदर्श के अनुसार पात्रों की सृष्टि करते हैं. प्रेमचंद जी की रचना में हम यह नहीं पाते. वे अपने पात्रों को स्वच्छंद चलने देते हैं और जो परिणाम होता है, उसे पाठक स्वयं देख लेते हैं. इसमें ('प्रेमाश्रम' में—गोयनका) पति-पत्नी का प्रेम वर्णित है, उद्दाम वासना का भी चित्र है, किसानों की दुर्दशा का वर्णन है, जमींदारों के द्वारा किये गये उत्पीड़न की चर्चा है, परंतु भाषा सर्वत्र संयत है. लेखक को अपने उत्तरदायित्व का पूरा ज्ञान है. आजकल के उपन्यास-लेखकों की तरह उन्होंने न तो कहीं औपन्यासिक प्रेम का वर्णन किया है और न औपन्यासिक अत्याचारों का. इसमें समाज का यथार्थ चित्रण है. कथा बड़ी हृदयग्राहिणी है. हमें विश्वास है कि हिंदी साहित्य के प्रेमी इसका उचित आदर करेंगे.

('सरस्वती', जून, 1922)

रघुपतिसहाय 'फिराक'

'प्रेमाश्रम' में ग्राम्य जीवन के जो चित्र खींचे गये हैं, वह तात्सतोय के चित्रों से टक्कर ले सकते हैं. तात्सतोय के चित्रों के बारे में कहा गया है कि वे जीवन के सदृश्य नहीं, साक्षात् जीवन हैं. प्रेमचंद जी ने 'प्रेमाश्रम' में ग्राम्य जीवन की ऐसी तस्वीरें खींची हैं कि यह नहीं मालूम होता कि हम उसके वृत्तांत पढ़ रहे हैं अथवा उनका चित्र देख रहे हैं, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि किसानों की उजड़ी हुई दशा साक्षात् हमारी आंखों के सामने मौजूद है, हम यह अनुभव करते हैं कि मानों हम स्वयं किसानों के जीवन में भाग ले रहे हैं. इंगलिस्तान के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक टामस हार्डी ने अपने वेसेक्स नाविल्स में भी इंगलिस्तान के ग्राम्य जीवन के बहुत सच्चे और अद्‌भुत चित्र खींचे हैं. मशहूर अंग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ ने भी अपनी कविता में इंगलिस्तान के कृषि जीवन के चित्र खींचने की चेष्टा की है, परंतु...वे अपने व्यक्तित्व को भूल नहीं सके. लेकिन 'प्रेमाश्रम' का लेखक अपने अस्तित्व को सर्वथा मिटाकर ग्रामीणों में जा मिला है. उनका जीवन लेखक का जीवन बन गया है.

प्रेमचंदजी ने किसानों के लिए वही काम किया है, जो मैक्सिम गोर्की के उपन्यासों ने बोलशेविज्म के सिद्धांतों के लिए किया और जार्ज इलियट के 'मिडिल मार्च' ने इंगलिस्तान के कार्न लॉ के लिए किया था.

('प्रभा' 1 जुलाई, 1922 में प्रकाशित लेख 'प्रेमाश्रम' से)
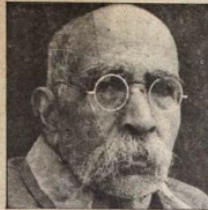
पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिंदी के सौभाग्य से इन प्रांतों में से एक ऐसे भी उपन्यास-लेखक प्रकाश में आ रहे हैं जिनके उपन्यास, सुनते हैं, उन्हीं की उपज हैं. 'सुनते हैं' इसलिए, क्योंकि हमको उनकी उपज का स्वत: कुछ भी ज्ञान नहीं. उनके जिन दो उपन्यासों की आलोचनाओं और विज्ञापनों की धूम कुछ समय से है, वे हमारे देखने में नहीं आये. उनका एक उपन्यास प्रकाशित हुए कुछ समय हुआ. दूसरा अभी हाल में निकला है. उसका नाम 'सेवाश्रम' ('प्रेमाश्रम'—गोयनका) या कुछ इसी तरह का है. इन उपन्यासों की जहां और अनेक लेखकों ने स्तुति और प्रशंसा की है, वहां एक आध ने पिछले उपन्यास में बहुत से दोष भी ढूंढ निकाले हैं और व्याख्यासहित उन्हें दिखाया भी है, दोषोद भावना करने में दोषदर्शक ने उपन्यास-लेखक के कानूनी अज्ञान, मन:शास्त्र विषयक अज्ञान, सामाजिक नियम-संबंधी अज्ञान आदि दिखाने का प्रयत्न किया है. यह अज्ञान-परंपरा उपन्यास-लेखक के किसी पक्षपाती को मान्य नहीं हुई; और संभव है, खुद लेखक को भी मान्य न हो. इसी से कृताक्षेपों का खंडनात्मक उत्तर भी कहीं हमने पढ़ा है, स्मरण तो यही कहता है.

('सरस्वती', अक्तूबर, 1922)

गणेश शंकर 'विद्यार्थी'

"हिंदी ने श्रीयुत प्रेमचंद को आख्यायिका लेखक के रूप में प्राप्त किया. उर्दू के क्षेत्र में वे दबे पड़े थे. हिंदी ने इस रत्न को उठाया, और उसकी चमक से लोगों को आह्लादित होने का अवसर दिया. उनकी कहानियां छोटी थीं, परंतु थीं बड़े गजब की. उनमें बहुत रस था. भाषा में वह प्रवाह कि लेखक का हाथ चूम लेने को जी चाहे. चरित्र-चित्रण ऐसा कि आंखों के सामने साक्षात् जीवन-ज्योति नाचने लगे. ये कहानियां जीवन की एक ही दिशा पर झलक डालती थीं. इससे अधिक होने पर कहानियों में नीरसता के उत्पन्न हो जाने का भय रहता है. प्रेमचंद जी ने आगे कदम बढ़ाये. उन्होंने उपन्यास लिखे. उनके 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' अच्छे उपन्यास हैं. उनका क्षेत्र बड़ा है. उनमें पात्रों की अधिकता है. उनमें घटनाओं की अनेक श्रेणियों का समावेश है. समाज के कितने ही अंशों का बहुत अच्छा चित्रण है. ये उपन्यास अच्छे थे, उनका आदर भी अच्छा हुआ, परंतु तो भी कहीं-कहीं यह धारणा थी कि उपन्यास-लेखक प्रेमचंद की अपेक्षा आख्यायिका-लेखक प्रेमचंद अधिक ऊंचे हैं. वर्तमान लेखक भी इस सम्मति के धारणकर्ताओं में से एक था, परंतु 'रंगभूमि' ने उसकी इस राय में गहरा परिवर्तन कर दिया है. वह, जो चमक आख्यायिका—लेखक प्रेमचंद में पाता था, वही और कहीं-कहीं उससे अधिक उज्ज्वल चमक, रंगभूमि लेखक प्रेमचंद में पाता है. 'रंगभूमि' बड़ी वस्तु है—इतनी बड़ी जितनी कि प्रेमचंद जी के हाथों से कभी नहीं रची गयी, इतनी बड़ी कि हिंदी में इस समय उसके समान दूसरा कोई उपन्यास नहीं.

('प्रभा', 1 मई, 1925 के अंक में प्रकाशित 'रंगभूमि' लेख से)

इलाचंद्र जोशी

हिंदी साहित्य के ख्याली उपन्यास सम्राट के लिखे हुए 'प्रेमाश्रम' की प्रशंसा करना तो, उसकी व्यापक राष्ट्रीयता के कारण सत्य का गला ही घोंटना है. ऐसा करना तो कला को इतना नीचे गिरा देना है, जो समझ के बाहर है. हमारे उपन्यास-सम्राट की 'रंगभूमि' तो राजनीतिक एवं सामाजिक क्षुद्रताओं के भयानक दृश्यों और क्षुद्र एवं अनभिज्ञतापूर्ण जातीयता संबंधी भावों से भरी हुई है.

('माडर्न रिव्यू', अगस्त, 1927 में प्रकाशित लेख से)
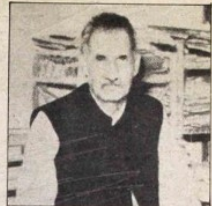
बनारसीदास चतुर्वेदी

मैं उस दिन का स्वप्न देख रहा हूं जबकि किसी हिंदी गल्प लेखक की कहानियों का अनुवाद रशियन, जर्मन, फेंच इत्यादि भाषाओं में होगा. यदि आप ही को यह गौरव प्राप्त हो तब तो बात ही क्या है. मेरे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा इसलिए है कि आप दूसरी भाषा वालों को कुछ देकर हिंदी का माथा ऊंचा कर सकते हैं. बंगला इत्यादि से दान लेते-लेते हमारा गौरव बढ़ नहीं रहा.

(प्रेमचंद को लिखे 28 मई. 1928 के पत्र से)

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

हिंदी के युगांतर-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रत्न, अंतर्प्रांतीय ख्याति के हिंदी के प्रथम साहित्यिक, प्रतिकूल परिस्थितियों से निर्भीक वीर की तरह लड़ने वाले, उपन्यास-संसार के एकछत्र सम्राट, रचना प्रतियोगिता में विश्व के अधिक से अधिक लिखने वाले मनीषियों के समकक्ष आदरणीय श्रीमान् प्रेमचंद आज महाव्याधि से ग्रस्त होकर शय्या शायी हो रहे हैं. कितने दु:ख की बात है कि हिंदी के जिन पत्रों में हम राजनीतिक नेताओं के मामूली बुखार का तापमान प्रतिदिन पढ़ते रहते हैं उनमें श्री प्रेमचंद जी की—हिंदी का महान उपकार करने वाले प्रेमचंद जी की अवस्था की साप्ताहिक खबर भी हमें पढ़ने को नहीं मिलती. दु:ख की बात नहीं यह लज्जा की बात है, हिंदी भाषियों के लिए मर जाने की बात है. उन्होंने अपने साहित्यिकों की ऐसी दशा नहीं होने दी कि

वे हंसते हुए जीते और आशीर्वाद देते हुए मरते. इसी अभिशाप के कारण हिंदी महारानी होकर अपनी प्रांतीय सखियों की दासी है.
('आज' साप्ताहिक के 1 अक्तूबर, 1936 में प्रकाशित लेख 'हिंदी के गर्व और गौरव-प्रेमचंद जी' से)

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अवमानित और निष्पेक्षित कृषकों की आवाज थे. पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकसों के महत्त्व के प्रचारक थे. अगर उत्तर-भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाव-भाषा, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा दुःख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो मैं आपको निःसंशय बता सकता हूं कि प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता. अंतिम काल में, प्रेमचंद ने नाना वर्ग-संघर्षों में से आर्थिक संघर्ष को ही प्रधान मान लिया, ऐसा जान पड़ता है. उनका यह विचार बुद्धि से नोच-खरोचकर नहीं निकाला गया था, वह उनके जीवन का अनुभव था.. पर वर्ग चेतनाओं में आर्थिक वर्गों के संघर्ष की चेतना को उन्होंने प्रधान माना तब भी और नहीं माना तब भी वे जीवन की सफलता सेवा और त्याग में ही मानते रहे. मुक्ति के इसी एक रास्ते का

हजारी प्रसाद द्विवेदी

उपदेश उन्होंने अंत तक दिया.
('वीणा', नवंबर, 1937 में प्रकाशित लेख 'प्रेमचंद का महत्व' से)

रामचंद्र शुक्ल

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के इस तृतीय उत्थान में हमारा उपन्यास, कहानी साहित्य ही सबसे अधिक समृद्ध हुआ. नूतन विकास लेकर आने वाले प्रेमचंद जो कर गये वह तो हमारे साहित्य की एक निधि ही है...प्रेमचंद जी के उपन्यासों में भी निम्न और मध्य श्रेणी के गृहस्थों के जीवन का बहुत सच्चा स्वरूप मिलता है. इस तृतीय उत्थान का आरंभ होते हमारे हिंदी साहित्य में उपन्यास की यह पूर्ण विकसित और परिष्कृत स्वरूप लेकर स्वर्गीय प्रेमचंद जी आये. द्वितीय उत्थान के मौलिक उपन्यासकारों में शील-वैचित्र्य की उद्भावना नहीं के बराबर थी. प्रेमचंद जी के ही कुछ पात्रों में स्वाभाविक ढांचे की व्यक्तिगत विशेषताएं मिलने लगीं जिन्हें

रामचंद्र शुक्ल

सामने पाकर अधिकांश लोगों को यह भासित हो कि कुछ इसी ढंग की विशेषता वाले व्यक्ति हमने कहीं न कहीं देखे हैं. ऐसी व्यक्तिगत विशेषता ही सच्ची विशेषता है, जिसे झूठी विशेषता और वर्गगत विशेषता दोनों से अलग समझना चाहिए. प्रेमचंद की-सी चलती और पात्रों के अनुरूप रंग बदलने वाली भाषा भी पहले नहीं देखी गयी थी. सामाजिक और राजनीतिक सुधारों के जो आंदोलन देश में चल रहे हैं उनका आभास भी बहुत से उपन्यासों में मिलता है. प्रवीण उपन्यासकार उनका समावेश और बहुत-सी बातों के बीच कौशल के साथ करते हैं. प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में भी ऐसे आंदोलनों के आभास प्रायः मिलते हैं, पर उनमें भी जहां राजनीतिक उद्धार या समाज सुधार का लक्ष्य बहुत स्पष्ट हो गया है, वहां उपन्यासकार का रूप छिप गया है और प्रचारक का रूप ऊपर आ गया है. □

('हिंदी साहित्य का इतिहास', सन् 1940)

नया साहित्य बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं

रामविलास शर्मा

प्रगतिशील साहित्य के आंदोलन में प्रेमचंद का शामिल होना कोई आकस्मिक घटना नहीं थी. उससे उनका संबंध एक अधिवेशन की सदारत कर देने-भर का न था. बीमारी और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद वह अपने स्वाभाविक उत्साह से इस आंदोलन में हिस्सा लेने लगे थे. वह समाज की प्रगति में बाधा डालनेवाले साहित्य का संगठित होकर मुकाबला करने और समाज की प्रगति में सहायक होनेवाले साहित्य का संगठित होकर प्रचार और प्रसार करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे थे.

प्रेमचंद ने देश की किन्हीं खास परिस्थितियों में प्रगतिशील लेखकों का आंदोलन उपयोगी समझा था. यह सन् 36 का जमाना था, जब कांग्रेसी नेता काले कानून के मातहत मंत्रिमंडल बनाने की तैयारी कर रहे थे, जब किसानों और मजदूरों के अपने संगठन अधिक सक्रिय रूप से आगे आ रहे थे. जब हिंदी साहित्य छायावाद और स्वयं प्रेमचंद के युग की देहरी पार करके एक नयी मंजिल की तरफ कदम उठा रहा था. प्रेमचंद को जनता की ताकत और नये लेखकों की लगन में विश्वास था. इसीलिए उन्होंने उस अवसर को उपयुक्त और शुभ बतलाया था.

9 और 10 अप्रैल को लखनऊ में होनेवाले अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघ के पहले अधिवेशन में प्रेमचंद ने सभापति-पद से जो भाषण दिया था, वह उनके निबंधों और भाषणों में ही श्रेष्ठ नहीं था, हिंदी और उर्दू में प्रगतिशील साहित्य पर जितने भाषण और निबंध लिखे-पढ़े गये हैं, सभी में उनका अन्यतम स्थान है.

इस भाषण में उन्होंने रीतिकालीन साहित्य, सामंती परंपराओं और दरबारों की संस्कृति पर करारा हमला किया और जनता के साहित्य के लिए अपनी जबर्दस्त आवाज बुलंद की. इस भाषण में उन्होंने सीधे-सीधे काम-शास्त्रियों और अध्यात्मवादियों को कड़ी फटकार बतलाई और अपना वह स्मरणीय वाक्य कहा—"ऐसे पतन के काल में लोग या तो आशिकी करते हैं या अध्यात्म और वैराग्य में मन रमाते हैं." इस भाषण में उन्होंने सौंदर्य की कसौटी को बदल देने की मांग की, साहित्यकार से मैदान में आकर समाज का नेतृत्व करने के लिए कहा : उन्होंने नये साहित्य के लिए मांग की कि उसमें "उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति और संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है."

प्रेमचंद साहित्यकार से यही मांग नहीं करते कि वह साहित्य रचे, वह उसे संघर्ष के मैदान में उतरने की दावत भी देते हैं. वह कहते हैं—"हम जब ऐसी व्यवस्था को सहन न कर सकेंगे कि हजारों आदमी कुछ अत्याचारियों की गुलामी करें, तभी हम केवल कागज के पृष्ठों पर सृष्टि करके ही संतुष्ट न रह जायेंगे, किंतु उस विधान की सृष्टि करेंगे जो सौंदर्य, सुरुचि, आत्मसम्मान और मनुष्यता का विरोधी न हो."

प्रस्तुति : धीरेंद्र अस्थाना

युवा लेखकों को संदेश

"युवक को आशावादी मन से लिखना चाहिए, उसकी आशावादिता संक्रामक होनी चाहिए, जिसमें कि वह दूसरों में भी उसी भावना का संचार कर सके. मेरे विचार में साहित्य का सबसे ऊंचा लक्ष्य दूसरों को उठाना, उन्नत करना है. हमारे यथार्थवाद को भी यह बात भूलनी न चाहिए. कितना अच्छा हो कि आप मनुष्यों की सृष्टि करें, निर्भीक, सच्चे, स्वाधीन मनुष्य, हौसलेमंद, साहसी मनुष्य, ऊंचे आदर्शों वाले मनुष्य. इस वक्त ऐसे ही आदमियों की जरूरत है."

(एक तरुण लेखक को लिखे 22 जनवरी, 1930 के पत्र से)

सामाजिक विकास और क्रांति

"मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूं. हमारा उद्देश्य जनमत को शिक्षित करना है. क्रांति ज्यादा समझदार उपायों की असफलता का नाम है. मेरा आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले. विकास को छोड़कर और किस जरिये से हम इस मंजिल पर पहुंच सकते हैं. लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्व है. कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती, जब तक कि हम व्यक्तिशः उन्नत न हों. कहना संदेहास्पद है कि क्रांति से हम कहां पहुंचेंगे? यह हो सकता है कि हम उसके जरिये और भी बुरी डिक्टेटरशिप पर पहुंचें जिसमें रंचमात्र व्यक्ति-स्वाधीनता न हो. मैं रंग-ढंग सब बदल देना चाहता हूं पर ध्वंस नहीं करना चाहता. अगर मुझमें पूर्व ज्ञान की शक्ति होती और मैं समझता कि ध्वंस के जरिये हम स्वर्गलोक में पहुंच जायेंगे तो मैं ध्वंस करने में भी आगा-पीछा न करता."

(डॉ. इंद्रनाथ मदान को 26 दिसंबर, 1936 को लिखे पत्र से)

साहित्य और संग्राम

"जब देश में कोई विप्लव या संग्राम होता है, तो जहां वह चारों तरफ हाहाकार मचा देता है, वहां हम में देव-दुर्लभ गुणों का संस्कार भी कर देता है. और साहित्य क्या है? हमारी अंतर्तम मनोवृत्तियों के विकास का इतिहास. इसलिए यह कहना अनुचित नहीं है कि साहित्य का विकास संग्राम ही में होता है. संसार-साहित्य के उज्ज्वल से उज्ज्वल रत्नों को ले लो, उनकी सृष्टि या तो किसी संग्रामकाल में हुई है, या किसी संग्राम से संबंध रखती है."

('हंस', जुलाई, 1930 में प्रकाशित लेख 'संग्राम में साहित्य' से)

साहित्य और बोल-चाल की भाषा

"निस्संदेह हिंदुस्तानी अपने रूप और वैभव और शब्द-संपदा में साहित्यिक भाषा नहीं है. साहित्यिक भाषा बोलचाल की भाषा से अलग समझी जाती है. मेरा ऐसा विश्वास है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति को बोलचाल की भाषा के निकट से निकट पहुंचना चाहिए. कम से कम नाटक, कहानी और उपन्यास साधारण बोलचाल की भाषा में हम लिख सकते हैं, इन्हीं में हम जीवनी और यात्रा-वर्णनों को भी शामिल कर सकते हैं और साहित्य की ये शाखाएं सम्पूर्ण साहित्य का तीन-चौथाई ठहरती हैं और ऐसा तीन-चौथाई जो सचमुच महत्व रखता है."

(रामचंद्र टंडन को 3 फरवरी, 1935 को लिखे पत्र से)

तुलसीदास

"तुलसीदास जी ने हिंदू जाति और हिंदू धर्म का जो उपकार किया है, उसका वर्णन करने का यहां स्थान नहीं है. उन्होंने हिंदू सभ्यता और हिंदू संस्कृति की बड़ी रक्षा की है. हिंदू समाज और हिंदू साहित्य उनके उपकार-भार से कभी मुक्त नहीं हो सकता."

('हंस', जुलाई 1933)

साहित्यकार और आदर्शवाद

"साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए. भावों का परिमार्जन भी उतना ही वांछनीय है. जब तक हमारे साहित्य-सेवी इस आदर्श तक न पहुंचेंगे तब तक हमारे साहित्य से मंगल की आशा नहीं की जा सकती. अमर साहित्य के निर्माता विलासी प्रवृत्ति के मनुष्य नहीं थे. वाल्मीकि और व्यास दोनों तपस्वी थे. सूर और तुलसी भी विलासिता के उपासक न थे. कबीर भी तपस्वी ही थे. हमारा साहित्य अगर आज उन्नति नहीं करता तो इसका कारण यह है कि हमने साहित्य-रचना के लिए कोई तैयारी नहीं की."

('साहित्य का उद्देश्य', पृ. 29)

साहित्य का उद्देश्य

"साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है. अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किंतु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है."

('साहित्य का उद्देश्य', पृ. 4)

लेखकों का सहकारी प्रकाशन

"लेखक-संघ—मेरी राय में उसका एकमात्र उपयोगी काम सहकारी प्रकाशन है जिसमें कि हर लेखक जो उसका सदस्य है, तीस से चालीस फीसदी रायल्टी पाने के लिए आश्वस्त हो जाये. हिंदी का बाजार इतना मंदा है और लेखक अपनी पुस्तकें छपवाने के लिए इतने आतुर हैं कि वे प्रकाशकों के साथ कोई भी समझौता कर लेंगे. वे अगर अपनी शर्तों पर अड़े रहें और प्रकाशक उनकी पुस्तकें प्रकाशित करने से इंकार कर दे तो फिर बेचारा कहीं का न रह जायेगा."

(रामचंद्र टंडन को 3 फरवरी, 1935 को लिखे पत्र से)

रूसी साहित्य

"उपन्यास और गल्प के क्षेत्र में जो गद्य-साहित्य के प्रमुख अंग हैं, समस्त संसार ने रूस का लोहा मान लिया है, और फ्रांस के सिवा और कोई ऐसा राष्ट्र नहीं है, जो इस विषय में रूस का मुकाबला कर सके. फ्रांस में बालजाक, अनातोले फ्रांस, रोमा रोलां, मोपासां आदि संसार प्रसिद्ध हैं, तो रूस में तालस्तोय, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, चेखव, दास्तोयेवस्की आदि भी उतने ही प्रसिद्ध हैं, और संसार के किसी भी साहित्य में इतने नक्षत्रों का समूह मुश्किल से मिलेगा."

'हंस', मई, 1933 में प्रकाशित लेख 'रूसी साहित्य और हिन्दी' से,

● प्रेमचंद की कहानियां : चार

कहते हैं कि सपने में हम वही देखते हैं जो वास्तविकता में हमें मिल नहीं पाता. पर उस सपने को आप क्या कहेंगे जिसमें आदमी खुद अपने बचपन और जवानी को दुबारा से जीने लगे.

और रों की तो मैं नहीं जानता, पर मुझे तो जो आनंद और सुख मिलता है वह स्वप्न में; वहीं पहुंचकर मैं दिल खोलकर हंसता हूं, दिल खोलकर रोता हूं और दिल खोलकर खेलता हूं. वहीं मेरा सुनहरा, रत्नजटित महल है, वहीं मेरी कामनाओं के फूल खिलते हैं, वहीं मेरी जबान अपनी होती है, मेरा कलम अपना होता है, मेरे विचार अपने होते हैं. मेरा वह संसार इस बंधन और कानून के संसार से कहीं ज्यादा प्रत्यक्ष कहीं ज्यादा शांतिमय और कहीं ज्यादा स्फूर्तिप्रद है.

वह तन्मयता, वह अनुराग, वह उत्कर्ष, वह जागृति जिसका मैं वहां अनुभव करता हूं, यहां कहां! रोना यही है कि वैसे स्वप्न बहुत कम दिखाई देते हैं. लोग किसी अच्छे आदमी का मुंह देखकर उठना चाहते हैं. मैं किसी अच्छे आदमी का मुंह देखकर सोना चाहता हूं.

मालूम नहीं कल किस भाग्यवान् का मुंह देखकर सोया था कि लेटते ही लेटते अपने स्वप्न-साम्राज्य में जा पहुंचा. क्या देखता हूं कि मेरा बचपन लौट आया है एक बार फिर मैं आजादी की हवा में दौड़ता फिरता हूं. मेरी वह स्नेहमयी माता, वह प्यारी बहन, वह बाल-सखा, वह छोटा-सा घर, वह द्वार पर नीम का वृक्ष—सब कुछ आंखों के सामने आ गया. उस उमंग, उस उत्साह को क्या लिखूं. वह तो वर्णनातीत है, कल्पनातीत है! मुझे खूब याद था कि अभी थोड़ी देर पहले मैं बूढ़ा था. मुझे स्वयं अपनी काया पलटने पर आश्चर्य हो रहा था. मुझे अपनी प्रौढ़ावस्था की सारी बातें याद थीं—जीवन भर की भूलों, अनुपायों, निराशाओं और विफलताओं की याद ने मेरे बालपन को दुर्लभ बना दिया था, प्रौढ़ता भी थी, औद्धित्य भी, उमंग भी थी, संयम भी, गंभीरता भी थी, चंचलता भी. पेड़ों पर चढ़ता हूं पर इस तरह कि गिर न पड़ूं, चीजों के लिए ज़िद भी करता हूं पर इस तरह नहीं कि रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा लूं, खेलता हूं तो इस तरह कि चोट न लगे, स्कूल में झूठे बहाने नहीं करता, चुगली नहीं खाता, काम से जी नहीं चुराता, जिन गलतियों से मेरा जीवन असफल हो गया था उन्हें दुहराकर इस दूसरे जीवन को भी असफल नहीं करना चाहता.

स्वप्न ही में यह शक्ति है कि वह महीनों, बर्षों और युगों को क्षणों में घटित कर दे और काल का भ्रम ज्यों का त्यों बना रहे. मैंने देखा कि मैं स्कूल से कॉलेज में जा पहुंचा हूं. कॉलेज नहीं है, लड़के भी नहीं. लेकिन अब मेरा किसी से द्वेष नहीं. मुझे याद है कि जिन लोगों को तुच्छ समझता था वे मुझसे कहीं आगे निकल गये.

अब मैं किसी की निन्दा नहीं करता था. याद था कि अध्यापकों के लेक्चर देते समय मैं उपन्यास पढ़ा करता था, खेल के समय बाजार की सैर किया करता था. वही गलतियां क्या फिर कर सकता था? वह उपन्यास-प्रेम हृदय का शून्य बन गया, वह बाजार की सैर पांव की बेड़ी बन गयी. अब मैं सभी काम अपने वक्त पर करता था. वह फैशन की गुलामी, वह टाई और कॉलर का शौक, वह नये-नये सूटों का उन्माद, वे हजारों बातें जिनका व्यसन हमारे छात्र जीवन को दूषित कर देता है, इनमें से मुझे अब किसी चीज़ का भी शौक न था. एक पूरे जीवन के अनुभव अब मेरी रक्षा कर रहे थे. वही मैं जिनके लिए हॉकी स्टिक नंगी तलवार थी और फुटबाल बम का गोला, अब बड़े उत्साह से इन खेलों में शरीक होने लगा. व्यायाम से उदासीन रहकर मुझे जो पापड़ बेलने पड़े वह खूब याद थे.

फिर क्या देखता हूं कि मेरे विवाह की तैयारियां हो रही हैं. अब तक तो मैंने जो बातें देखी थीं उनसे जीवन का सुधार होने की ही आशा थी, किसी चिंता या भय की बात न थी. लेकिन विवाह जैसी महान घटना ने मेरी चेतना को मानो धक्के देकर जगा दिया. बालपन या यौवन अगर लौट आया है तो भी कुछ गांठ से तो नहीं जाता. लेकिन कहीं विवाह हो गया तो एक की जगह दो-दो पत्नियां हो जायेंगी! सोचिये, कितनी भीषण समस्या थी. मैं बड़े धर्म-संकट में पड़ा हुआ हूं कि विवाह करूं या न करूं. इस विवाह संवाद ने मेरी पूर्व-स्मृतियों को कुछ और जागृत कर दिया था. सोचता था कि भला यहां किसी को यह विश्वास आयेगा! मैं तो पहले ही से इस वैतरणी में पड़ा हुआ हूं और वह भी सिर पर आधी दरजन छोटी-बड़ी गठरियां लिये हुए. मुझे खुद भी पूरा-पूरा निश्चय नहीं है कि मैं वास्तव में क्या हूं—बूढ़ा या जवान? मैं तो इस दुबधे में पड़ा हुआ हूं और उधर घरवाले विवाह के सब सामान जुटाने पर तुले हुए हैं. अम्मा हैं कि उनके पांव जमीन पर नहीं पड़ते मानो संसार की जब से सृष्टि हुई है, उनके बेटे के सिवाय और किसी को यह सौभाग्य प्राप्त ही नहीं हुआ. दादा भी जिन्हें बाजार से नफरत है, जो बाजार को पैसे का परनाला कहते हैं और जिन्हें आभूषणों के नाम से चिढ़ है. इस विषय में अम्माजी से हजारों ही बार उनकी ठन चुकी है, अम्माजी के अकबरी हमलों के सामने भी वह राणा प्रताप की भांति बराबर डटे रहे. आज खुश-खुश सर्राफों की दूकानों की हवा खा रहे हैं. बार-बार बाजार आते-जाते थे, पर माथे पर बल का नाम भी न था. और मैं इस सोच में हूं कि यह जवानी कहीं धोखा न हो. स्मृति के किसी गुप्त भाग में यह बात छिपी हुई मालूम होती है कि मेरे बाल-बच्चे हैं, स्त्री है, साले हैं, ससुर हैं. मुझे चिंता हो रही थी कि जब मैं यह नयी बहू लिये घर जाऊंगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे. जवान बेटे हैं जो वृद्ध-विवाह को जीवन का सबसे बड़ा पाप समझते हैं. जिसके साथ जीवन के तीस साल बीते हैं वह स्त्री है. उन सबों के सामने मैं कौन मुंह लेकर जाऊंगा! यह न पूछिये कि नववधू के साथ मैं अपने मां-बाप के घर के बदले अपने घर क्यों लौटता? मेरा तो घर-बार ही नहीं. लेकिन वहां तो पूर्व-स्मृतियां बनी हुई थीं. उनके कुछ मिटे-मिटे निशान साफ नजर आ रहे थे. फिर स्वप्न न्याय और श्रृंखला और घटनाक्रम का अनुसरण भी तो नहीं करता. सोचता था मित्र वर्ग कितना मजाक उड़ायेंगे—वाह महाशय! आप तो अनमेल विवाहों के बड़े विरोधी थे. यह आपको क्या सनक सवार हो गयी!

प्राण संकट में पड़े थे. सोचता था, अम्मा को कैसे समझाऊं? कहीं लोग हंसने न लगें कि यह दीवाना हो गया है.

इतने में बाजे बजने लगे. अम्मा ने आकर मुझसे कहा, तुम्हारी भी विचित्र बात है, ऐसा मुंह लटकाये बैठे हो याने कोई चिंता-फिकर सवार हो. सारे घर में मंगल-गान हो रहा है और तुम रोनी सूरत बनाये बैठे हो. अभी तो हम जीते हैं, तुम्हें क्या चिंता? जब हम मर जायं, तब चिंता करना! उठो, बारात जा रही है. जल्दी से कपड़े पहन लो!

मैं कुछ जवाब न दे सका. मां से कैसे कहूं कि मेरा तो विवाह एक बार तुम्हीं कर चुकी हो. चुपचाप जाकर कपड़े पहने. स्त्रियों ने गीत गाये. नाई, धोबी आदि ने न्योछावर पाये और मैं दूल्हा बना हुआ घर से निकलकर पालकी पर बैठा. कहारों ने पालकी उठायी. फिर मैंने देखा कि मैं वधू के द्वार पर पहुंच गया. जनवासे में वही शोरगुल, चिल्लपों मचा हुआ था जैसा दस्तूर है. जरा देर में मुझसे कहा गया कि पाणिग्रहण का मुहूर्त आ गया, चलो. अब मेरे लिए कठिन परीक्षा का समय था. जिस तरह अब तक बिना कान-पूंछ हिलाये सब कुछ करता आया हूं और उसी तरह इस वक्त भी चुपके से चला गया तो अनर्थ हो जायेगा. पांव में बेड़ी पड़ जायेगी और मैं कहीं का न रहूंगा. अगर यह जवानी मरीचिका ही निकली तो शेष जीवन कलंकित ही नहीं, दुःखमय हो जायेगा. कहीं का न रहूंगा. क्या कहकर जान बचाऊं, कौन-सा बहाना करूं? लोग मेरी बातों पर हंसेंगे और मुझे पागल समझेंगे. लेकिन यह जवानी बर्फ की तरह पिघल गयी तो इस युवती के साथ कितनी छीछालेदर होगी!

मैं उठकर भागा, जामा जोड़ा मोर पहने लपड़-सपड़ करता भागा. मेरे पीछे लोग दौड़े. मैं इस तरह जान छोड़कर भागा जा रहा था मानो कोई भयंकर जंतु मेरे पीछे पड़ा हुआ हो, यहां तक कि सामने एक नदी आ गयी और मैं उसमें कूद पड़ा.

बस, नींद खुल गयी. देखता हूं तो चारपाई पर पड़ा हुआ हूं, मगर सांस फूल रही है. □

'प्रेमाश्रम' का सही प्रकाशन काल क्या है?

■ नित्यानंद पटेल

'प्रेमाश्रम' उपन्यास 1922 ई. में हिंदी पुस्तक एजेंसी (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित हुआ था. उपन्यास का प्राक्कथन श्री रामदास गौड़ द्वारा लिखित है, जिसके अंत में 'होली, 1979' मुद्रित है. इससे 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन-काल मोटे तौर पर सन् 1922 ठहरता है. जून, 1922 को 'सरस्वती' में 'प्रेमाश्रम' का निम्न परिचय छपा था : 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंदजी का नया उपन्यास है, अभी हाल में प्रकाशित हुआ है. 655 पृष्ठों में यह पूरा हुआ है. कलकत्ता की हिंदी पुस्तक एजेंसी ने इसे प्रकाशित किया है. मूल्य साढ़े तीन रु. है.

'सरस्वती' में प्रकाशित उपर्युक्त पुस्तक-परिचय से यह प्रमाणित होता है कि 'प्रेमाश्रम' जून, 1922 से पूर्व प्रकाशित हो चुका था. 31 मई, 1922 को प्रेमचंद ने श्री दयानारायण निगम को लिखा था: 'बाजारे-हुस्न' पढ़ियेगा. मेरा नया नाविल (प्रेमाश्रम) भी शाया हो गया. बड़े अच्छे रिव्यू हो रहे हैं. उपर्युक्त पत्र के आधार पर 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन 31 मई से पूर्व माना जाना चाहिए.

1 अक्तूबर, 1922 को प्रेमचंद द्वारा मुंशी दयानारायण को लिखे पत्र से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है. पत्र की पंक्तियां निम्न हैं. "आपको यह सुनकर खुशी होगी कि 'प्रेमाश्रम' की 1200 जिल्दें निकल गयीं. अब दूसरे एडीशन की तैयारी है." अपने प्रथम प्रकाशित 'सेवासदन' उपन्यास से प्रेमचंदजी ने पाठकों के हृदय को जीत लिया था, इसलिए 'प्रेमाश्रम' का प्रथम संस्करण हाथोंहाथ (चंद महीनों में ही) बिक गया शिवरानी देवी ने भी 'प्रेमाश्रम' का प्रकाशन सन 1922 ही माना है.

ऐसी अवस्था में 'प्रेमाश्रम' का जो विवेचन प्रकाशन-काल सन् 1921 (डॉ. श्री कृष्णलाल तथा श्री अमृतलाल आदि), अथवा सन् 1923 (डा. गीता लाल) बताते हैं, वे गलती पर हैं.

'प्रेमाश्रम' (गोशए-आफियत) पहले उर्दू में लिखा गया था. श्री अमृतराय के अनुसार "मूल उर्दू पांडुलिपि का लेखनकाल, 3 मई 1918 से 25 फरवरी, 1920 तक है. जो कि पांडुलिपि पर ही अंकित है." लेखक ने शुरू में इसके दो नाम सोचे थे 'नामकाम' और 'नेकनाम'.

लेकिन प्रेमचंद ने इम्तियाज अली 'ताज' को 20 अक्तूबर, 1920 में लिखा था. "ईश्वर ने चाहा तो चंद माह में मेरा अपना नाविल तैयार हो जायेगा." फिर 29 फरवरी, 1921 को उन्होंने 'ताज' को लिखा था "इन किस्सों के अलावा एक नाविल 'नाकाम' शाया कर रहा हूं." इन पत्रों से सिद्ध होता है कि 'प्रेमाश्रम' उर्दू-रूप का लेखन जनवरी, 1921 से कुछ पूर्व समाप्त हुआ था, न कि 25 फरवरी, 1920 को.

उर्दू में लिखित इस उपन्यास का हिंदी रूपांतर 8 जनवरी, 1921 से फरवरी, 1922 के बीच हुआ, पर प्रेमचंद द्वारा श्री दयानारायण निगम को 3 जनवरी, 1921 को (नाविल की हिंदी कर रहा हूं) तथा इम्तियाज अली 'ताज' को 16 फरवरी, 1922 को (मेरा हिंदी नाविल खत्म हो गया है) लिखित पत्रों द्वारा पता चलता है.

'प्रेमाश्रम' के 1922 ई. में प्रकाशित हो जाने के बाद उसका उर्दू संस्करण 'गोशए-आफियत' 1928 ई. में प्रकाशित हुआ था. □

(शोध प्रबंध 'प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना' से)

"लेखक के पास तो उसकी तपस्या ही होती है!" –प्रेमचंद

प्रस्तुति : डॉ. कमल किशोर गोयनका

किसी भी लेखक के जीवन से गुजरना एक रोचक, रोमांचक तथा प्रेरणादायक अनुभव होता है. यदि लेखक प्रेमचंद हों तो पाठक ऐसे लेखक के जीवन की परिस्थितियों, तनावों, संघर्षों, मान्यताओं, समझौतों तथा जीवन जीने की कला से बहुत कुछ ग्रहण कर सकता है। प्रेमचंद की पुण्यतिथि के 50 वर्ष 8 अक्तूबर, 1986 को पूरे हो रहे हैं, स्वाभाविक है, हमारे मन में यह जिज्ञासा होती है कि प्रेमचंद ने 50 वर्ष पूर्व किस प्रकार का जीवन जीया. वे कैसे जीये और कैसे मरे. काल-प्रवाह के साथ निकट का अतीत भी लुप्त होने लगता है और मनुष्य के लिए वैसे भी अतीत की तुलना में वर्तमान महत्त्वपूर्ण होता है. प्रेमचंद हमारे ऐसे वर्तमान के लेखक थे जो अतीत होता जा रहा है, परंतु उनके जीवन तथा साहित्य में ऐसी ऊर्जा है कि वे आने वाली पीढ़ियों के वर्तमान के ही लेखक बने रहेंगे. आज हम भी अपने वर्तमान में प्रेमचंद के वर्तमान को देखना चाहते हैं, कम से कम हम इतना तो जान ही लें कि ठीक 50 वर्ष पूर्व प्रेमचंद ने अपने जीवन के अंतिम क्षणों, तनावों, संघर्षों, चुनौतियों आदि को किस प्रकार जीया तथा साहित्य एवं मनुष्यता के लिए वे किस प्रकार अपना जीवन-रस अर्पित करते रहे.

ऐसे लेखक के अंतर्लोक एवं बहिर्लोक की यात्रा साहित्य तथा मनुष्यता के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण है और हममें वैसा ही कुछ करने की बेचैनी उत्पन्न करती है.

■ प्रेमचंद : अंतिम दर्शन

1 जनवरी– 'गोदान' के दूसरे ड्राफ्ट के अंतिम पृष्ठ लिखने में व्यस्त रहे.

2 जनवरी– सरस्वती प्रेस के मैनेजर प्रवासी लाल वर्मा (जिन्हें गबन के आरोप में प्रेमचंद ने हटा दिया था) का पत्र मिला. उन्होंने प्रेस से हुई आमदनी का जिक्र किया और खुद पर लगाये गये गबन के आरोप को असत्य बतलाया. वर्मा ने अपने गुजारे की समस्या भी प्रस्तुत की.

प्रेमचंद ने तुरंत उत्तर में एक लंबा पत्र लिखा.

इसी तिथि को सन् 1936 की डायरी में प्रेमचंद ने 'गोदान' के होरी पर कर्ज का विवरण लिखा :

आरंभ में होरी पर कर्जा

मंगरू साह	60 के 300 हो गये
दुलारी	100
दातादीन	100
लगान	25
नाम अस्पष्ट है	25+80

3 जनवरी– 'अभ्युदय' के सम्पादक पद्मकांत मालवीय के पत्र का उत्तर दिया. पद्मकांत ने शिकायत करते हुए पत्र लिखा था कि आप 'अभ्युदय' से नाराज़ क्यों हैं और उसे अपनी कहानी-लेख क्यों नहीं देते? प्रेमचंद ने अपने उत्तर में लिखा कि मैं लेखादि नहीं दे सका, इसका मतलब यह नहीं है कि मैं नाराज हूं. फिर पद्मकांत से अपने अंतर का उल्लेख करते हुए पत्र में लिखा, "मैं तो तुम्हारे घर भी हो आया हूं, पान खा आया हूं. हां, गरीब और दानी में जो अंतर होता है, वह मुझमें और तुममें है. मैं गरीब वर्ग को विलास करता हूं, तुम धनी वर्ग को, नहीं इतना पान क्यों खाते? मैं भी पान खाता हूं, मगर मेरा नशा ताड़ी है, तुम्हारा शेरी."

12-14 जनवरी– इलाहाबाद की हिंदुस्तानी एकेडमी के सालाना जलसे में भाग लेने पहुंचे. इसमें मुंशी दयानारायण निगम, रघुपतिसहाय 'फिराक', डा. रामकुमार वर्मा, मौलाना अब्दुल हक, अहमद अली, डॉ. गंगानाथ झा आदि विद्वान भी शामिल हुए. इस जलसे में हिंदी-उर्दू की समस्या पर विस्तार से विचार हुआ. प्रेमचंद इसमें काफी दुखी थे कि हिंदी और उर्दू के आमंत्रित विद्वानों को अलग-अलग स्थान पर ठहराया गया. प्रेमचंद का मत था, "अगर दोनों समुदाय मिल नहीं सकते तो न मिलें. अपनी डफली अलग बजाना चाहते हैं, तो बजाते जायं; लेकिन क्या इसमें भी कोई बुराई है कि दोनों एक-दूसरे की सुन भी नहीं सकते?" प्रेमचंद ने अपने भाषण में हिंदी-उर्दू की समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा, "वर्नाक्यूलर फाइनल और हाई स्कूल परीक्षा तक उर्दू और हिंदी दोनों लाजिमी विषय बना दिये जायें, तभी आने वाली पीढ़ी जिस भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए जो शब्द उपयुक्त समझेगी, उसका व्यवहार करेगी."

15 मार्च– सज्जाद जहीर का पत्र मिला. जहीर ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करने की प्रार्थना की. प्रेमचंद ने उत्तर देते हुए लिखा, "सभापतित्व की बात, मैं इसके योग्य नहीं. विनम्रतावश नहीं कहता, मैं अपने में कमजोरी पाता हूं. मिस्टर कन्हैयालाल मुंशी मुझसे बेहतर होंगे या डाक्टर जाकिर हुसैन पंडित जवाहरलाल नेहरू तो व्यस्त होंगे नहीं वे एकदम उपयुक्त होंगे. इस अवसर पर सभी राजनीति के नशे में चूर होंगे, साहित्य से शायद ही किसी को दिलचस्पी हो, लेकिन हमें कुछ न कुछ तो करना होगा. यदि जवाहरलाल ने दिलचस्पी ली तो अधिवेशन सफल हो जायेगा."

18 मार्च– बनारसीदास चतुर्वेदी को शांति-निकेतन न आने के कारणों का उल्लेख करते हुए प्रेमचंद ने पत्र में लिखा, "मैं शांति निकेतन नहीं आ सका. वहां पर मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं है. वे लोग मुझसे उम्मीद करेंगे कि मैं बड़ा विद्वतापूर्ण भाषण दूं, जोकि मैं कर नहीं सकता. मैं कोई विद्वान आदमी नहीं हूं, तो भी अगर वे लोग मुझे काफी पहले से बुलायें, तो मैं आने की कोशिश कर सकता हूं. मिनट-भर की तार की सूचना पर मैं तैयारी नहीं कर सकता."

10 अप्रैल– 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन किया और उर्दू में लिखा अपना वक्तव्य पढ़ा. प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के नाम पर आपत्ति करते हुए कहा, "प्रगतिशील लेखक संघ, यह नाम ही मेरे विचार में गलत है. साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः

JANUARY, 1936

2 Thursday

Hori's debts at the opening
Mangru Saha – 60 from to 300/-
Dulari 100
Datadin 100
Rent- 25
Dhr 25+80/

प्रेमचंद की डायरी पर लिखा होरी के कर्ज का विवरण

प्रगतिशील होता है. अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता. उसे अपने अंदर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी. इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है." साहित्यकार के दायित्वों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, "जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है–चाहे वह व्यक्ति हो या समूह–उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है. उसकी अदालत के सामने वह अपना वह अपना इस्तगासा पेश करता है और उसकी न्यायवृत्ति तथा सौंदर्यवृत्ति को जागृत करके अपना यत्न सफल समझता है."

20 जून– बनारस में गोर्की की मृत्यु की खबर मिली. 'आज' कार्यालय में होने वाली शोक सभा के लिए प्रेमचंद सबेरे 4 बजे तक अपना भाषण लिखते रहे. पत्नी ने गोर्की के बारे में कुछ जिज्ञासाएं रखीं और पूछा कि क्या उसने हिंदुस्तान के लिए भी कुछ लिखा है. इस पर प्रेमचंद ने कहा, "तुम गलती करती हो रानी. लेखक के पास होता ही क्या है, जिसे वह अलग-अलग बांट दे. लेखक के पास तो उसकी तपस्या ही होती है, वही सबको वह दे सकता है. उससे सब लोग लाभ ही उठाते हैं. लेखक तो अपनी तपस्या का कुछ भी अंश अपने लिए नहीं रख छोड़ता. और लोग जो तपस्या करते हैं, वह तो अपने लिए. लेखक जो तपस्या करता है, उससे जनता का कल्याण होता है. वह अपने लिए कुछ भी नहीं करता."

25 जून– रात के ढाई बजे प्रेमचंद को खून की उल्टी हुई. पत्नी ने देखा तो सिहर गयी, मानो किसी ने देह में बिजली छुआकर घाव कर दिया हो.

प्रेमचंद ने कहा, "रानी, अब मैं चला."

रानी ने अपने स्वाभाविक शासन-स्वर में कहा, "चुप रहो. तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते."

मुंशीजी ने मुंह फेर लिया. श्रीपत दौड़कर डॉक्टर को बुलाने गया. डॉक्टर ने पित्त की खराबी बताई और ठीक होने का विश्वास दिलाया.

जुलाई– बीमारी से निरंतर दुर्बल होने के कारण पत्नी बार-बार लेखन-कार्य बंद करने और पूर्ण विश्राम करने का आग्रह करती रहीं. प्रेमचंद इसे अस्वीकार करते हुए कहते, "मैं मजदूर हूं, मजदूरी किये बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं है."

अपना प्रसिद्ध 'महाजनी सभ्यता' लेख भी उन्होंने उर्दू में इसी महीने लिखा जो 'जमाना' उर्दू पत्रिका के अगस्त अंक में छपा तथा हिंदी में 'हंस' के सितंबर अंक में प्रकाशित हुआ. इस लेख में उन्होंने महाजनी सभ्यता-धन-वैभव पर आधारित सभ्यता की कटु आलोचना की और समता, बंधुत्व, लोकसेवा, समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान आदि पर आधारित नयी सभ्यता का समर्थन किया.

6-7 अगस्त– प्रसिद्ध डॉक्टर हरगोविंद सहाय को दिखाया. जांच के बाद डॉक्टर ने रोग बताया–जलोदर और जिगर का सख्त पड़ जाना. खाने को मूंग की पतली खिचड़ी ले रहे थे. कहानीकार गंगाप्रसाद मिश्र एक दिन आये हुए थे. प्रेमचंद ने खिचड़ी खाते समय मजाक में पापड़, दही मिर्च, नींबू का अचार की इच्छा व्यक्त की तो गंगाप्रसाद मिश्र घर दौड़कर गये और लेकर आये. प्रेमचंद ने मिश्र से 'पिकविक पेपर्स' मंगाकर पढ़ी और 'मुहाराजिन' कहानी सुनकर दिल खोलकर दाद दी.

■ शिवरानी देवी : अपनी प्रपौत्री के साथ

11 अगस्त— लखनऊ से बनारस पहुंचे. अंदर जाकर लेटे तो पत्नी से बोले, "मैं अब नहीं बचने का." पत्नी की आंखों से आंसू की धारा बह निकली. प्रेमचंद ने लमही गांव चलने का आग्रह किया, लेकिन बेटे की सलाह मानते हुए शिवरानी ने बनारस में ही रहने का फैसला किया. शहर में आवश्यकता पड़ने पर तुरंत डॉक्टर मिल सकता था.

12 अगस्त— 'हंस' के जून-जुलाई के अंकों में सेठ गोविंददास का नाटक 'विचार स्वातंत्र्य' प्रकाशित हुआ तो सरकार ने इस पर एक हजार रुपये की जमानत मांग ली। महात्मा गांधी जमानत देकर 'हंस' को निकालने के पक्ष में नहीं थे. अत: भारतीय साहित्य परिषद् ने जमानत देना अस्वीकार कर दिया और 'हंस' को बंद करने की घोषणा सरकार और प्रेमचंद को लिख भेजी.

15-16 अगस्त— 'हंस' की जमानत जमा की और सरकार ने पुन: प्रकाशित करने की अनुमति दे दी.

17 अगस्त— डॉक्टरों ने ज्यादा खुले और हवादार मकान में रहने की सलाह दी तो रामकटोरा बाग वाले भारतेंदु हरिशचंद्र के मकान विलास-भवन में चले गये.

सितंबर— इस मास में कभी प्रेमचंद ने पत्नी से कुछ आत्मस्वीकृतियां कीं. रात को 1 बजे उन्हें नींद नहीं आ रही थी. पत्नी को पास बुलाया और कहा कि तुम्हारी चोरी से बंगाली युवक की बीवी के जेवर तथा कपड़ों का भी मैंने ही भुगतान किया था. दूसरी चोरी की जानकारी देते हुए कहा, "अच्छा, एक और चोरी सुनो. मैंने अपनी पहली स्त्री के जीवनकाल में ही एक ओर स्त्री रख छोड़ी थी. तुम्हारे आने पर भी उससे मेरा संबंध था."

8 अक्तूबर— रात्रि को 12 बजे जैनेंद्र से 'हंस' तथा बच्चों के भविष्य के संबंध में बातचीत होती रही. मृत्यु की ओर बढ़ते हुए 'हंस' के जीवन-मरण का प्रश्न उनके मन को मथ रहा था.

रात के 3 बजे घर के अन्य लोग सोये हुए थे. प्रेमचंद और जैनेंद्र एक कमरे में थे. यह कमरा छोटा था और अंधेरा घेरे हुए था. चारों ओर सन्नाटा था.

प्रेमचंद जैनेंद्र को देखते रहे, देखते रहे. फिर बोले, "आदर्श से काम नहीं चलेगा."

जैनेंद्र ने कहना चाहा, "आदर्श...!"

प्रेमचंद बोले, "बहस न करो." फिर करवट लेकर आंखें मींच लीं.

प्रात: 7 बजे शिवरानी देवी मुंह धुलाने के लिए पानी लेकर आयीं. प्रेमचंद ने दांत मांजने के लिए खरिया मिट्टी मुंह में ली, दो-एक बार मुंह चलाया, पर दांत बैठ गये. कुल्ला करने के लिए इशारा किया पर मुंह नहीं फैल सका. शिवरानी देवी ने उन्हें जोर लगाते देखा, पर वहां तो उल्टी सांस चल रही थी. घबराकर बोली, "कुल्ला भी नहीं कीजिएगा क्यों"

प्रेमचंद ने बेबस आंखों से रानी को देखा और दम उखड़ते-उखड़ते रुकती-अटकती कुएं के भीतर से आती हुई-सी भारी गूंजती आवाज में डूबते आदमी की तरह पुकारा, "रानी..."

रानी लपकी कि शायद मेरे हाथ से कुल्ला करना चाहते हैं. जैनेंद्र इस हालत को देखकर डॉक्टर को लेने के लिए भागे. वे जब 10 बजे लौटे ही थे कि प्रेमचंद के प्राण-पखेरू उड़ गये.

दो-तीन घंटे की निरंतर मूर्छा के बाद अंत में मृत्यु ने जीवन का हरण कर ही लिया. □

■ शिवरानी देवी : प्रेमचंद की सुश्रूषा में

मैं महज पुरातन समाज की कमियों को उजागर करने में समर्थ हूं

'समाज को बनाने के पीछे सर्वहारा का सबसे बड़ा हाथ है, यह तथ्य मैंने अक्तूबर क्रांति के बाद ही जाना हो; ऐसा नहीं है. मैं तो पूंजीवादी देशों के विपरीत प्रचारों की वजह से अक्तूबर क्रांति के प्रति उत्साहित भी न हो सका. कुछ भ्रांतियां भी रहीं....'

शंघाई में सितंबर सन् 1930 को खींचा गया फोटो: पचास वर्ष की अवस्था में लू शुन.

अपने समय के समाज, राजनीति और साहित्य पर लू-शुन की पकड़ इतनी गहरी और समीचीन थी कि आज भी हमें तत्कालीन स्थितियों को समझने-बूझने के लिए लू-शुन को पढ़ना जरूरी लगता है. अक्तूबर क्रांति के प्रति लू-शुन पहलेपहल भले ही उदास रहे हों...पर बाद में वे इससे प्रभावित हुए और उन्हें लगा कि निश्चित रूप से वर्गहीन समाज बनेगा. 'इंटरनेशनल लिटरेचर' को दिये गये उनके जवाबों से यह बात एकदम साफ हो जाती है कि वे अपने देश की स्थितियों की गंभीरता को तो पूरी तरह समझते ही थे...यह भी जानते थे कि उस वक्त नये समाज के निर्माण को प्रोत्साहित करने वाले साहित्य से ज्यादा युद्ध संबंधी लेखन महत्वपूर्ण था. पूंजीवादी देशों के षड्यंत्रों और कारगुजारियों पर भी उनकी पैनी नजर थी.

दरअसल, चीनी समाज को लू-शुन के रूप में एक कालजयी द्रष्टा मिला था जिसे हर वक्त अपने मुल्क की क्रांतिधर्माजनता का खयाल रहता था.

यह छोटी-सी बातचीत जहां लू-शुन की खुली सोच को सामने रखती है...वहीं सोवियत संघ की तत्कालीन उपलब्धियों के विश्वव्यापी असर को भी रेखांकित करती है—

□ सोवियत संघ और इसकी सफल उपलब्धियों पर आप किस रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे? अक्तूबर क्रांति के जरिए आपके विचार और लेखन में किस तरह का अंतर आया है?

पहले पहल मैं प्राचीन समाज की बुराइयों को लेकर सोचता था. नये समाज के विकास की सही प्रक्रिया जाने बगैर सोचता था कि इस 'नये

हस्तलेख में 'इंटरनेशनल लिटरेचर' को दिये गये जवाब

समाज' का ढांचा कैसा होगा. मुझे यह यकीन भी पूरी तरह से नहीं था कि 'नये समाज' की बेहतरी से ही हालात सुधर जायेंगे. समाज को बनाने के पीछे सर्वहारा का सबसे बड़ा हाथ है, यह तथ्य मैंने अक्तूबर क्रांति के बाद ही जाना हो, ऐसा नहीं है.

मैं तो पूंजीवादी देशों के विपरीत प्रचारों की वजह से अक्तूबर क्रांति के प्रति उत्साहित भी न हो सका. कुछ भ्रांतियां भी रहीं...पर अब मैं सोवियत संघ के वजूद और उपलब्धियों को पूरी तरह स्वीकार करता हूं. अब एक वर्गहीन समाज जरूर बनेगा. मेरी भ्रांतियां तो खत्म हो ही गयी हैं...मैं उत्साहित भी हुआ हूं.

जहां तक मेरे लेखन का संदर्भ है...मैं तो इस क्रांतिकारी माहौल से बाहर ही हूं. लंबे अर्से से न तो मैं यात्रा कर पाया हूं...न ही चीजों को ठीक से देख-समझ पाया हूं. यही वजह है कि मैं महज पुरातन समाज की खराबियों-कमियों को उजागर करने में समर्थ हूं.

□ सोवियत साहित्य के संदर्भ में आपके क्या विचार हैं?

दरअसल, मैं जर्मनी और जापानी भाषानुवाद ही पढ़ सकता हूं. जहां तक मेरी पसंद और उपयोगिता का सवाल है...मुझे लगता है कि (समाज) निर्माण पर लिखे इधर के उपन्यास इतने उपयोगी नहीं जितने इससे पूर्व युद्ध पर लिखे गये उपन्यास हैं...सोवियत साहित्य पढ़ने की मेरी असली वजह यही है कि मैं इसे चीन में पेश करना चाहता हूं. चीन के लिए इस वक्त युद्ध संबंधी लेखन बहुत जरूरी और महत्वपूर्ण है.

□ पूंजीवादी देशों में चल रही किन सांस्कृतिक धाराओं और हलचलों ने आपको आकर्षित किया?

चीन में मुझे बड़बोली संस्कृति कहीं नजर नहीं आती.

जहां तक मेरी जानकारी है, हमारे मुल्क में वे लोग बिजली, यंत्र और रासायनिक चीजों का प्रयोग भी क्रांतिधर्मा लोगों को यंत्रणाएं देने के लिए कर रहे हैं. जहाजों और बमों का इस्तेमाल हमारी क्रांतिधर्मा जनता के खात्मे के लिए किया जा रहा है. □

● लू शुन के विचार : दो

आशा ही भविष्य होती है

■ लू शुन : सन् 1926

लड़कपन में मेरे मन में भी बहुत से स्वप्न थे. उनमें से अधिकांश स्वप्नों को भूल चुका हूं. इस बात के लिए मन में कोई मलाल नहीं है. हां, कभी अतीत की याद से सुख भी होता है, पर कभी वह स्मृति मन में एक सूनापन भी भर देती है. सूनेपन से भरे अतीत की बातों की याद करते रहने से लाभ भी क्या? पर मुसीबत यह है कि अतीत को पूरी तरह भूल भी तो नहीं पाता. जो कुछ भूल नहीं सका, उसी का परिणाम मेरी कहानियां हैं.

चार वर्ष से भी अधिक समय तक एक ऐसी अवस्था रही कि प्रायः प्रतिदिन ही कुछ न कुछ गिरवी रख आने के लिए महाजन के पास जाना पड़ता था और फिर दवा की दूकान पर जाता था. ठीक-ठीक याद नहीं कि उस समय मेरी आयु कितनी थी, यह जरूर याद है कि दवा की दूकान पर जाता तो मेरा सिर काउंटर तक पहुंच जाता था और महाजन के यहां का काउंटर मेरे शरीर से दूनी ऊंचाई पर था. उसके यहां जो कुछ भी कपड़ा-लत्ता या चीज-बस्त गिरवी रख आने के लिए ले जाता, उसे बाह उठाकर महाजन के हाथ में देना होता. महाजन बड़े तिरस्कार के साथ जो कुछ दे देता, मैं ले लेता और दवा खरीदने चला जाता. दवा की दूकान पर काउंटर ऊंचा होने की कठिनाई नहीं थी. पिता काफी अरसे से बीमार थे. उनके लिए दवा खरीदनी होती थी. घर लौटने पर करने को बहुत कुछ होता था. एक बड़े नामी हकीम पिता का इलाज कर रहे थे. वे बहुत विचित्र-विचित्र नुस्खे और दवाइयां तजबीज करते थे. जाड़े के मौसम में खोदी हुई घीकुंवार की जड़, तीन साल तक ओस-पाले में रखा हुआ गन्ना, झींगुर की जोड़ी, अजीब गंध और महक भरी जड़ी-बूटियां....ये औषधियां प्रायः दुष्प्राप्य होती थीं, परंतु मेरे पिता का रोग बढ़ता ही गया और वे चल बसे.

मैं समझता हूं, सुख-समृद्धि के अच्छे दिन देख लेने के बाद, जिन्हें दरिद्रता का जीवन बिताना पड़ता है, वे संसार और समाज की वास्तविकता को खूब अच्छी तरह देख-परख सकते हैं. मैं चाहता था कि अभी जाकर स्कूल में भरती हो जाऊं. कारण शायद यह था कि मैं अपने यहां के माहौल से ऊब गया था और एक नये माहौल में जाना चाहता था. मां विवश थीं. मेरी यात्रा के लिए आठ डालर जुटाकर मुझे अपने मन की कर लेने दें, इसके सिवा उनके सामने कोई उपाय न था. मां बहुत रोईं, यह स्वाभाविक ही था. उन दिनों पुराने ग्रंथों को पढ़कर सरकारी इम्तहान पास कर लेना ही सम्मानजनक समझा जाता था. जो कोई 'विदेशी विषयों' को पढ़ता था, उसे हिकारत की नजर से देखा जाता था और यह समझा जाता था कि वह मजबूर होकर अपनी आत्मा विदेशी दरिंदों को बेच चुका है. इस पर मां को मेरे बिछोह का भी दुख था. जो हो, मैं चला ही गया और स्कूल में दाखिल भी हो गया. वहां जाकर पहली बार मालूम हुआ कि प्राकृतिक-विज्ञान, अंकगणित, भूगोल, इतिहास, ड्राइंग और शारीरिक व्यायाम आदि विद्याओं का भी अस्तित्व है. स्कूल में शरीर-विज्ञान की शिक्षा नहीं दी जाती थी, परंतु 'मानव शरीर-रचना का नया कोर्स' और 'रसायन–विज्ञान तथा स्वास्थ्य-रक्षा पर लेख' जैसी रचनाएं, जो लकड़ी के ब्लाकों से छपी होती थीं, हमारे हाथों में पड़ ही जाया करती थीं. उससे पूर्व सुनी वैद्यों और हकीमों की बातों और उनके नुस्खों को याद करके तथा नयी पढ़ी पुस्तकों से उनकी तुलना करके मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि वे लोग या तो अज्ञानी लालबुझक्कड़ थे अथवा धूर्त थे. ऐसे हकीम-वैद्यों के हाथ पड़नेवाले रोगियों और उनके परिवारों पर मुझे दया आती. इतिहास की पुस्तकों के कुछ अनुवाद भी पढ़े. मालूम हुआ कि जापान में भी सुधारों का आरंभ बहुत हद तक उस देश में पश्चिमी चिकित्सा-शास्त्र का परिचय पहुंचने से ही हुआ.

इन विचारों से प्रभावित होकर मैं जापान चला गया और एक प्रांतीय मेडिकल कालेज में भरती हो गया. उस समय कल्पना थी कि चीन में मेरे पिता की ही तरह लाखों अभागे ऐसे हैं, जो उचित इलाज नहीं पा रहे, लौटकर उनका उचित इलाज कर सकूंगा. यदि युद्ध आरंभ हो गया तो सेना में डाक्टर के रूप में सेवा कर सकूंगा और साथ ही अपने देशवासियों में सुधार की प्रेरणा का प्रचार करने का यत्न करता रहूंगा.

नहीं मालूम कि आजकल चिकित्सा-शास्त्र के स्कूल-कालेजों में सूक्ष्म-जीव विज्ञान पढ़ाने हेतु किस प्रकार के नये-नये साधन उपयोग में लाये जा रहे हैं. जब मैं चिकित्सा-विज्ञान पढ़ रहा था तो सूक्ष्म-जीवों का परिचय विद्यार्थियों को लालटेन-स्लाइडें दिखाकर दिया जाता था. कभी व्याख्यान समय से पहले समाप्त हो जाता तो अध्यापक समय पूरा करने के लिए प्राकृतिक दृश्यों अथवा समाचारों की स्लाइडें दिखा देते थे. उन दिनों रूस-जापान युद्ध चल रहा था, इसलिए युद्ध की फिल्में काफी आती रहती थीं. मुझे भी दूसरे विद्यार्थियों के साथ बड़े उत्साह से लैक्चर हाल में तालियां बजानी और हर्षनाद करना पड़ता था. बहुत दिन से अपने किसी देशवासी को नहीं देखा था. एक दिन एक फिल्म में कुछ चीनी दिखाई दिये. एक चीनी की मुश्कें बंधी हुई थीं और दूसरे कई चीनी उसे घेरे हुए खड़े थे. ये लोग काफी तगड़े जवान थे, परंतु उनके चेहरे बिलकुल भावशून्य नजर आ रहे थे. बताया गया कि मुश्कें बंधे चीनी पर रूसियों का जासूस होने का आरोप था. जापानी सैनिक इस चीनी की गर्दन काटने के लिए उसे मैदान में लाये थे. यह दंड दूसरे चीनियों को चेतावनी देने के लिए मैदान में दिया जा रहा था, जबकि बाकी चीनी यह तमाशा देखने के लिए आ जुटे थे.

शिक्षा-सत्र समाप्त होने से पहले ही मैं टोकियो चला गया, क्योंकि उक्त घटना के बाद मुझे लगा कि चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण नहीं है. पिछड़े हुए और निर्बल राष्ट्र के लोगों के शरीर चाहे कितने ही बलवान और स्वस्थ क्यों न हों, उनका उपयोग दंड देने के लिए अथवा दंड देने का तमाशा देखने के लिए ही किया जा सकता है, अगर ऐसे लोग रोग से घुल-घुल कर मर भी जायें, तो भी कोई अधिक दुखदाई बात नहीं. सबसे महत्वपूर्ण बात तो है लोगों की भावना को बदलना. तब यही जान पड़ा कि इस प्रयोजन के लिए साहित्य ही सबसे अधिक उपयोगी हो सकता है. इस विचार से मैंने एक साहित्यिक आंदोलन आरंभ करने का निश्चय कर लिया. उस समय टोकियो में बहुत-से चीनी विद्यार्थी थे. वे कानून, राजनीति शास्त्र, भौतिक विज्ञान और रसायन-शास्त्र पढ़ रहे थे, कुछ पुलिस के काम की अथवा इंजीनियरिंग की शिक्षा

> 'यदि लोग हमारे विचार का विरोध करें तो हम उनसे लोहा लेने के लिए आगे बढ़ सकते हैं...परंतु जब हम समाज में कोई बात उठायें और लोग उसका समर्थन न करें, न विरोध ही करें, चारों ओर उपेक्षा ही हो, तो आदमी क्या करें?' लू-शुन के विचारों का वह महत्वपूर्ण दस्तावेज जो हमें इस विभ्रम से बाहर निकलने में मदद करता है.

भी ले रहे थे, परंतु साहित्य और कला का अध्ययन कोई भी नहीं कर रहा था. इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी भाग्यवश मुझे अपनी भावना से सहमत कुछ लोग मिल गये. हमने कुछ और लोगों को भी, जिनकी हमें जरूरत थी, अपने साथ मिला लिया और आपस में विचार-विमर्श करने के बाद एक पत्रिका आरंभ करने का निश्चय कर लिया. सोचा, पत्रिका के नाम से नये जीवन का बोध होना चाहिए. उस समय हम लोगों की साहित्यिक रुचि में प्राचीनता के प्रति झुकाव था, इसलिए पत्रिका का नाम रखा गया 'शिन शड.' (नवजीवन).

जब इस पत्रिका को छपवाने का समय आया

■ लू. शुन बर्नार्ड शॉ के साथ

तो हमारे कई सहयोगी खिसक गये. जो धन राशि हमने जमा की थी, वह भी कम हो गयी. अंततः हम तीन ही ऐसे साथी रह गये, जिनके पास पैसा-बैसा बिलकुल नहीं था. पत्रिका का आरंभ ही कुछ अशुभ घड़ी में हुआ था, अपनी असफलता के लिए भला किसे दोष देते. कुछ दिन बाद किस्मत ने हम तीनों को भी एक साथ नहीं रहने दिया. हमारे भावी सपने साकार नहीं हो सके और 'नवजीवन' के प्रकाशन के प्रयत्न गर्भ में ही समाप्त हो गये.

कुछ समय बीतने के बाद ही मुझे अपने उत्साह की निस्सारता अनुभव होने लगी इससे पहले दरअसल मैं कुछ नहीं समझ पाता था. बाद में यह बात समझ में आने लगी कि लोग हमारे प्रयत्न का समर्थन करें तो उत्साह पाना स्वाभाविक ही है. यदि लोग हमारे विचार का विरोध करें तो हम उनसे लोहा लेने के लिए आगे बढ़ सकते हैं, परंतु जब हम समाज में कोई बात उठायें और लोग न उसका समर्थन करें, न विरोध ही करें, चारों ओर उपेक्षा ही हो, तो आदमी क्या करे? तब ऐसा लगता है मानो हम किसी निस्सीम बियाबान में खड़े व्यर्थ ही चिल्ला रहे हों, कुछ कर सकने का कोई उपाय न हो. मैं अपने आपको निस्सहाय अनुभव करने लगा.

एकाकीपन की यातना दिन पर दिन बढ़ती गयी. लगता था कि एकाकीपन का विषैला अजगर मुझे चारों ओर से जकड़ता जा रहा है. मन पर भारी बोझ था, पर क्रोध किस पर करता, क्योंकि इस अनुभव से मैंने यह देख लिया था कि मुझमें शौर्य का अभाव है, अपनी पुकार पर असंख्य लोगों को गोलबंद कर सकने की क्षमता का अभाव है.

एकाकीपन की यह अनुभूति मुझे बहुत यातना रही थी, इसलिए इससे मुक्ति पाना मेरे लिए आवश्यक था. किसी बात की चिंता न करने और अपने आपको भुला देने के बहुत यत्न किये. कभी अपने राष्ट्र के अतीत में खो जाना चाहा. बाद में मुझे और भी अधिक एकाकीपन और सूनापन अनुभव होने लगा. उन सबको याद करने से क्या लाभ, बेहतर यही होगा कि ये स्मृतियां मेरे ही साथ काल के मुंह में चली जायें. फिर यही होगा जायें. फिर भी मन के उस बोझ को भुला देने का

■ शंघाई स्थित लू शुन का अध्ययन कक्ष

"इससे तो अच्छा है कि तुम स्वयं कुछ लिखो...."

चिन का अभिप्राय मैं समझ गया. वह कुछ लोगों के साथ मिलकर एक पत्रिका 'नया नौजवान' निकाल रहा था. पत्रिका की ओर लोगों ने विशेष ध्यान नहीं दिया था. न उसका समर्थन किया, न विरोध मुझे लगा कि वे लोग भी एकाकीपन अनुभव कर रहे हैं, सहयोग चाहते हैं. कुछ सोचकर मैंने कहा, "कल्पना करो, लोहे की मोटी दीवारोंवाला मकान है. न कोई दरवाजा है और न खिड़की या रोशनदान. वायु के लिए कोई मार्ग नहीं है. दीवारें बिलकुल दुर्भेद्य हैं. मकान में बहुत से लोग बेसुध सोये हुए हैं. निश्चय ही वे लोग दम घुटकर मर जायेंगे, परंतु बेसुधी में मरेंगे, इसलिए उन्हें कोई कष्ट अनुभव नहीं होगा. तुम चीख-चिल्लाकर उन्हें जगाना चाहो तो संभव है कुछ एक की नींद उचट भी जाये. दम घुटने से उनकी मृत्यु निश्चित है. यदि कुछ अभागे जाग जायें और निश्चित मृत्यु की यातना अनुभव करें तो इससे उनका क्या भला होगा?"

"अगर कुछ की नींद उचट सकती है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उस लौह-कारागार को तोड़ने की कोई आशा नहीं है?"

यह सच है कि मैं आशा छोड़ चुका था, परंतु यह कैसे कह देता कि आशा थी ही नहीं. आशा तो भविष्य होती है, उसके विषय में कैसे इनकार कर देता? अपनी निराशा का उदाहरण देकर उसकी आशा पर कुठाराघात नहीं कर सका. मान लिया, लिखूंगा, परिणाम हुआ मेरी पहली कहानी 'पागल की डायरी'. तब से लिखता ही गया. जब भी मित्र कहते, छोटी-मोटी कहानी लिख डालता. □

प्रयत्न असफल न रहा—मैं यौवन के उत्साह और स्फूर्ति से वंचित हो चुका था.

होस्टल में तीन कोठरियां थीं. आंगन में एक बबूल का पेड़ था. लोग कहते थे कि उस मकान में कोई औरत रहती थी, जो आंगन के पेड़ की डाल से फांसी लगाकर मर गयी थी. अब पेड़ इतना ऊंचा हो गया था कि उसकी डालियों को छू पाना आसान नहीं था. मगर मकान खाली पड़ा था. कुछ वर्षों तक मैं इसी मकान में रहा और पुराने शिलालेखों की प्रतिलिपियां बनाता रहा. बहुत कम लोग मुझसे मिलने आते. उन पुराने शिलालेखों में राजनीतिक समस्याओं अथवा मामलों का कोई प्रसंग नहीं हो सकता था. बस, यही इच्छा थी कि शेष जीवन इसी प्रकार चुपचाप बीत जाये. गर्मियों में रात के समय इतने मच्छर हो जाते कि उनसे बचने के लिए एक पंखा हाथ में लेकर बबूल के पेड़ के नीचे बैठ जाता, और घने पेड़ों के बीच से जहां-तहां दिखाई देते आकाश की ओर टकटकी लगाये रहता. पेड़ की डालियों और पत्तियों से बरफ जैसी ठंडी बूंदियां सहसा मेरी गर्दन पर टपक पड़ती थीं.

चिन शिन-ई, जो मेरा पुराना मित्र था, कभी-कभी मिलने या बातचीत करने आ जाता. चिन आता तो अपना बड़ा-सा बस्ता टूटी मेज पर रख देता और अपना लंबा चोगा उतारकर मेरे सामने बैठ जाता. पीछा करते कुत्तों के भय से उसकी सांस उखड़ी-उखड़ी लगती थी.

एक दिन शाम के वक्त पुराने शिलालेखों की मेरी बनाई प्रतिलिपियों को देखकर चिन कौतूहलवश पूछ बैठा, "ये प्रतिलिपियां बनाने से लाभ क्या है?"

"कुछ भी नहीं."

"तो फिर इसमें समय क्यों बर्बाद करते हो?"

"समय काटने के लिए."

समझ के दायरे का विस्तार

यदि हम अपनी समझ के दायरे को विस्तृत करना चाहते हैं तो आसपास के गुंजलक को खत्म करने के लिए दूसरे मुल्कों का साहित्य पढ़ना चाहिए. यह कोई कठिन काम भी नहीं है. यह ठीक है कि इधर के साहित्य की बहुत अधिक किताबें अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं हैं...पर जो भी उपलब्ध हैं, वे भरोसेमंद कही जा सकती हैं.

दूसरे मुल्कों के वैचारिक और साहित्यिक जानकारी के बाद अपने मुल्क के साहित्य पर हम ज्यादा सही विचार बना सकेंगे. □

सफलता की कुंजी

यदि आप एक ही विषय पर काम करते रहें तो अवश्य ही उसके चरम तक जा पहुंचेंगे. इसकी चिंता न करते हुए यदि आप निरंतर उसी विषय से संबंधित नयी नयी चीजों पर प्रकाश डालते रहें तो लोग समझेंगे कि अपनी हंसी आप स्वयं उड़ा रहे हैं. इसके बावजूद आप निरंतर काम करते रहें और अपने साथ कुछ समर्थकों को भी इकट्ठा कर लें तो जाहिर तौर पर लोग इसे सामान्य रूप में लेने लगेंगे. फिर आप निश्चित होकर अपना काम तो करते ही रहेंगे...उसमें पूरी तरह सफल भी हो सकेंगे. □

□ लू शुन

● लू शुन की कहानियां : एक

कौन होगा जो अपने परिवार को सुखी नहीं देखना चाहेगा, पर एक सुखी परिवार की परिभाषा क्या है? एक सुखी परिवार में क्या होना चाहिए और क्या नहीं? इस संसार में कोई परिवार सुखी परिवार है भी या यह सिर्फ एक सपना है?

"**अ**भिव्यक्ति की इच्छा ही लेखक को लिखने के लिए प्रेरित करती है : ऐसा लिखना सूर्य के प्रकाश की भांति, असीमित चमकदार प्रकाश की भांति होता है. लोहे पर चकमक टकराकर उत्पन्न की गयी चिनगारी उस प्रकाश की तुलना नहीं कर सकती. ऐसी कला ही वास्तविक कला है. ऐसा लेखक ही सच्चा कलाकार है. ...लेकिन मैं अपने विषय में क्या कहूं?"

सोचता-सोचता वह सहसा बिस्तर से कूद पड़ा और खड़ा हो गया. उसने सोच लिया कि अपने परिवार के निर्वाह के लिए जैसे भी हो, लिखकर कुछ न कुछ कमाना आवश्यक है. यह भी निश्चय कर चुका था कि इस बार अपना लेख 'सुखदा मासिक' को भेजेगा. 'सुखदा मासिक' के प्रकाशक, पारिश्रमिक के मामले में दूसरे प्रकाशकों की अपेक्षा कुछ उदार थे. लेकिन उसके लिए केवल सीमित विषयों पर ही लिखा जा सकता है. वरना लेख स्वीकार नहीं किया जाता. खैर, सीमित विषयों पर ही सही. हमारे समाज की नयी पीढ़ी की प्रमुख समस्याएं क्या हैं? ....समस्या एक थोड़े ही है, अनेक हैं, सैकड़ों हैं. ...प्रेम, विवाह, परिवार आदि की समस्याएं. ...निश्चय ही सैकड़ों-हजारों लोग ऐसी समस्याओं से परेशान हैं. उन समस्याओं पर ही लिखा जाये, पर किस ढंग से लिखा जाये? ...ऐसा न हो कि लेख अस्वीकृत हो जाये. ..पहले ही सी ऐसी अशुभ बात क्यों सोची जाये?

लेखक बिस्तर पर कूदकर खड़ा हो गया. चार कदम पर उसकी मेज थी मेज पर जा बैठा. कागज ले लिया. कागज पर महीन हरी लकीरें बनी हुई थी. तुरंत, जरा शिथिल हाथ से शीर्षक लिख दिया 'सुखी परिवार'.

लेखक की कलम रुक गयी. आंखें छत की ओर लगाए सोचने लगा कि इस 'सुखी परिवार' के लिए कैसी परिस्थितियों और स्थान की कल्पना की जाये?

"पेकिंग?" उसने सोचा. "पेकिंग ठीक नहीं रहेगा, बहुत निर्जीव नगर है. वातावरण में बिलकुल निर्जीव है. उस नगर में ऐसे 'सुखी परिवार' के लिए किसी ऊंचे परकोटे से घिरी हुई हवेली की भी कल्पना कर ली जाये तो भी 'सुखी परिवार' को उस दूषित वातावरण के प्रभाव से कैसे बचाया जा सकेगा? श्वास तो वे लोग पेकिंग की ही वायु में लेंगे. च्याङसू और चच्याङ भी ठीक नहीं. वहां किसी भी समय लड़ाई छिड़ सकती है. फूच्येन का भी सवाल नहीं उठता. सछ्वान? क्वाङतुङ? वहां लगातार लड़ाई चल रही है. शानतुङ या हनान कैसे रहेंगे? ...नहीं, यदि वहां 'सुखी परिवार' की पत्नी या पति का अपहरण हो गया तो फिर परिवार सुखी कैसे रह जायेगा? शांघाई और थ्येनचिन की विदेशी बस्तियों में मकान का किराया बहुत अधिक है. ...तो 'सुखी परिवार' को विदेश में बसा दिया जाये? यह भी बड़ा हास्यास्पद हो जायेगा. युन्नान क्वेइच्औ के बारे में कुछ मालूम नहीं है, परंतु वहां यातायात के साधन बहुत खराब हैं...."

लेखक ने काफी माथा-पच्ची की, परंतु सुखी परिवार की कहानी के लिए कोई उचित स्थान नहीं सूझ सका. सोचा, फिलहाल 'ए' ही लिख लिया जाये. फिर खयाल आ गया कि आजकल बहुत से लोग नामों में विदेशी वर्णमाला के अक्षरों के प्रयोग पर आपत्ति करने लगे हैं. कहते हैं कि इससे पाठकों की रुचि कम हो जाती है. ऐसे झंझट में पड़ने से क्या लाभ? अपनी कहानी में ऐसी बात नहीं होनी चाहिए. खैर, नगर का नाम क्या दिया जाये? ...हूनान में भी लड़ाई चल रही है. ताल्येन में भी मकान का किराया बहुत बढ़ गया है. छाहाड़, चीलिन और हेलुङच्याङ में सुनते हैं डाकुओं का बहुत आतंक है. ऐसे नगर 'सुखी परिवार' के लिए उपयुक्त स्थान कैसे हो सकते हैं!

लेखक बहुत देर तक सुखी परिवार के लिए उपयुक्त स्थान की कल्पना में उलझा रहा, परन्तु ठीक स्थान नहीं सूझा. हार मानकर निश्चय किया, फिलहाल सुखी परिवार को 'ए' में ही बसा दिया जाये.

जो हो, सुखी परिवार का घर 'ए' में ही रहा. इस विषय में झगड़ा करने की क्या जरूरत है. परिवार में पति-पत्नी तो होंगे ही...मालिक और मालकिन....प्रेम के परिणामस्वरूप परिणय-सूत्र में बंधे हुए. उनका विवाह पहले से सुविचारित-सुनिश्चित चालीस-पैंतालीस शर्तों के अनुसार हुआ है. स्वभावतः दोनों के संबंध पूर्ण समानता और पूर्ण स्वतंत्रता पर आधारित हैं. दोनों ही उच्च शिक्षित हैं, सुसंस्कृत अभिजात वर्ग के हैं....आजकल जापान जाकर शिक्षा पाने का विशेष फैशन नहीं रहा, इसलिए उन्हें योरप में शिक्षा प्राप्त बताना ज्यादा उचित होगा. पति सदा योरपीय ढंग का सूट पहनता है.

उसकी कमीज का कालर खूब सफेद होना चाहिए. पत्नी के बाल घुंघराले व छल्लेदार बने रहते हैं, स्वच्छ दांत मोतियों की तरह चमकते हैं, लेकिन उसकी वेषभूषा देशी ही रहनी चाहिए...."

"वाह, यह कैसे हो सकता है? यह कैसे हो सकता है? पूरे साढ़े बारह सेर है."

खिड़की के बाहर मर्दानी आवाज सुनाई दी. लेखक की निगाह उस ओर उठ गयी. खिड़की में लटके पर्दे से धूप छन-छनकर आ रही थी. आंखें चौंधिया गयीं. बाहर से ईंधन का बोझ धरती पर पटकने की आवाज सुनाई दी. "खैर, जाने दो," उसने सोचा.....ध्यान कागज पर लगाने का यत्न किया. "'साढ़े बारह सेर' क्या है?...सुखी परिवार के लोग सुसंस्कृत अभिजात वर्ग के हैं, कला-साहित्य में उनकी रुचि है. उनके संस्कार समृद्ध परिस्थितियों के हैं, इसलिए उन्हें रूसी उपन्यास पसंद नहीं. रूसी उपन्यासों में प्रायः गरीब लोगों की ही चर्चा रहती है. ऐसे उपन्यासों का सुखी परिवार में क्या स्थान? 'साढ़े बारह सेर'? खैर, जाने दो. तो फिर सुखी परिवार कैसी किताबें पढ़ता है?...बायरन की कविता? कीट्स? यह नहीं चलेगा, दोनों ही खतरनाक हैं....ओह, अब सूझा—पति-पत्नी दोनों को ही 'आदर्श पति' नामक रचना पढ़ना पसंद है, लेकिन स्वयं मैंने यह पुस्तक नहीं पढ़ी है. तो क्या हुआ, यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों से तो इस पुस्तक की प्रशंसा सुनी है. पति-पत्नी को यह पुस्तक अवश्य पसंद आनी चाहिए. पति पढ़ता है पत्नी भी पढ़ती है. दोनों के लिए अलग-अलग प्रति आवश्यक है. इसलिए परिवार में इस पुस्तक की दो प्रतियां चाहिए..."

लेखक को पेट में कुछ खिंचाव-सा, खालीपन-सा अनुभव हुआ. कलम रख दी. दोनों कोहनियां मेज पर टिकाकर सिर को दोनों हाथों में थाम लिया जैसे घड़े को संभालने के लिए घड़ोंची बना ली हो.

"....पति-पत्नी दोपहर का खाना खा रहे हैं." लेखक ने कल्पना की. "मेज पर दूधिया सफेद चादर बिछी हुई है. रसोइया खाना परोस रहा है—देसी पकवान. 'साढ़े बाहर सेर'. क्या 'साढ़े बारह सेर'? खैर, जाने दो...आखिर भोजन विदेशी क्या बताया जाये? यारेप के लोग कहते हैं कि चीनी भोजन सबसे बढ़िया होता है, सबसे स्वादिष्ट होता है, निरोग बनाता है. इसलिए चीनी भोजन ठीक रहेगा. रसोइया परोसना आरंभ करता है. सबसे पहले...सबसे पहले क्या परोसा जाना चाहिए?"

"ईंधन..."

लेखक ने सहसा घूमकर देखा. घरवाली बगल में खड़ी उसे घूर रही थी.

"क्या है?" लेखक ने जरा झल्लाहट से पूछ लिया. अपनी एकाग्रता में विघ्न पड़ना उसे अच्छा नहीं लगा.

"घर में ईंधन नहीं रहा था. अभी खरीदा है. पिछली बार खरीदा था तो पसेरी के 280 तांबे के सिक्के दिये थे. देखो, आज 260 मांग रहा है. मेरा ख्याल है, 250 का भाव लगा दूं. ठीक है?"

"हां-हां ठीक है, 250 दे दो."

"तौलने में तो बेईमानी की ही है उसने. सवा बारह सेर बता रहा है. मैं पौने बारह सेर के दाम दे दूं? ठीक है न?"

"हां-हां ठीक है, पौने बारह सेर के दाम लगा दो."

"अच्छा तो सुनो, पांच पंजे पच्चीस हुए और तीन पंजे पंद्रह...."

"ओह, ओह, ठीक है...पांच पंजे पच्चीस हुए और तीन पंजे पंद्रह...." लेखक हिसाब में अटक गया. उसने कुछ देर मन ही मन गिना, फिर कलम उठाकर सामने रखे कागज पर गुणा किया. ऊपर शीर्षक था 'सुखी परिवार'. हिसाब करके लेखक ने बताया:

"580 दे दो."

"मेरे पास काफी नहीं हैं, आठ-नौ कम पड़ रहे हैं..."

लेखक ने मेज की दराज खींच ली, सब पैसा समेटकर निकाल लिया. लगभग बीस-तीस तांबे के सिक्के थे. लेखक ने सब घरवाली की अंजुली में भर दिये. स्त्री चली गयी तो उसने फिर कागज की ओर मन लगाया. लेखक का सिर फटा जा रहा था, मस्तिष्क में जैसे ईंधन ही भर गया हो. 'पांच पंजे पच्चीस' के आंकड़े मस्तिष्क में अब भी बिखरे हुए थे. एक आह भरकर उसने गहरी सांस छोड़ दी, जैसे सांस के साथ ही मस्तिष्क में भरे ईंधन को निकाल देना चाहता हो, हिसाब के आंकड़ों को मिटा देना चाहता हो. लंबी-गहरी सांस छोड़ देने से मस्तिष्क में कुछ सुविधा अनुभव हुई. वह फिर सोचने लगा.

"क्या खाना परोसा जाये? इस झगड़े की क्या जरूरत है? कोई भी बढ़िया किस्म की, बड़े लोगों के लायक चीज हो सकती है. शूकर का मांस, मछली या झींगा मछली तो बहुत मामूली चीजें हैं. संभ्रांत लोगों के लिए 'अजगर और शेर' जैसा कोई नामी व्यंजन परोसा जाना चाहिए. परंतु उस भोजन में मांस किसका होगा? कुछ लोग तो कहते हैं कि अजगर और शेर की बात गप्प ही है. वास्तव में यह सांप और बिल्ली का ही मांस है, और यह क्वाङ्तुङ का एक उच्च कोटि का भोजन है, जिसे सिर्फ रईस लोगों की बड़ी-बड़ी दावतों में परोसा जाता है. हां, याद आता है कि एक बार च्याङ्सू के एक रेस्तरां में ऐसा खाना मिलने की बात सुनी थी. च्याङ्सू के एक रेस्तरां में ऐसा खाना मिलने की बात सुनी थी. च्याङ्सू में लोग सांप और बिल्ली तो क्या खाते होंगे! अलबत्ता मेंढक और ईल मछली जरूर खाते होंगे. खैर, 'सुखी परिवार' के दंपत्ति किस प्रांत के लोग होने चाहिए? अरे इससे क्या फर्क पड़ता है. किसी भी प्रांत के लोग सांप और बिल्ली या मेंढक और ईल मछली खा सकते हैं. 'सुखी परिवार' की सुख-समृद्धि में इससे कोई अंतर पड़ने की आशंका नहीं हो सकती. जो भी हो, यह तो निश्चित है कि सबसे पहले उनके लिए 'अजगर और शेर' नाम का व्यंजन परोसा जाना चाहिए.

"रसोइये ने 'अजगर और शेर' का बर्तन लाकर मेज के बीचोंबीच रख दिया. सुखी दंपति ने अपनी चापस्टिकें उठायीं. बर्तन की ओर हाथ बढ़ाते हुए दोनों की आंखें मिलीं और दोनों ने एक साथ एक दूसरे से विदेशी भाषा में अनुरोध किया:

" 'जानेमन, शौक फरमाएं!'

" 'पहले आप लीजिए न!'

" 'नहीं, पहले आप लीजिए!'

"दोनों ने एक साथ ही बर्तन से सांप का...सांप नहीं, सांप के मांस का एक-एक ग्रास ले लिया. सांप-वांप ठीक नहीं है. सुनने में अच्छा नहीं लगता. ईल मछली ही जंचता है. अभिप्राय यह है कि 'अजगर और शेर' के नाम से चलने वाले व्यंजन वास्तव में मेंढक और ईल मछली से ही तैयार किये जाते हैं. दोनों ने ईल मछली के दो-दो ग्रास ले लिये, बिलकुल बराबर-बराबर. पांच पंजे पच्चीस, पांच तियां.... छोड़ो इस झगड़े को. दोनों ने एक साथ दो ग्रास ले लिये..." लेखक को अपने पीछे की तरफ कई लोगों के आने-जाने की आहट और बहुत उत्तेजना का आभास मिल रहा था, किंतु वह उधर ध्यान नहीं देना चाहता था. उसने एकाग्रता बनाये रखने का यत्न किया, ध्यान उचट जाने पर भी कहानी में मन लगाये रखने का यत्न किया.

"यह तो बहुत ज्यादा भावुकता हो गयी. परिवार में इस प्रकार का व्यवहार कौन करता है? मेरी कल्पना बिलकुल गोबर होती जा रही. इतना अच्छा विषय है, बिगड़ता जा रहा है...कहानी में विदेश से लौटा दंपति दिखाने की क्या जरूरत है? यहां चीन में ही उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों का आचरण भी पर्याप्त हो सकता है. वे दोनों ही अपने देश के यूनिवर्सिटी ग्रेजुएट, सुसंस्कृत, अभिजात लोग हैं...पति लेखक है, पत्नी भी लेखिका है या वह साहित्य-प्रेमी हो सकती है. मान लो, पत्नी कवयित्री है, पति काव्यप्रेमी है या नारी समाज के प्रति आदर-भावना से ओतप्रोत है, अथवा..."

लेखक के लिए और अधिक आत्मसंयम से काम लेना संभव नहीं रहा, उसे पलटकर देखना पड़ा.

लेखक की कुर्सी के पीछे, किताबों की अलमारी के साथ पातगोभियों का ढेर लग गया था, नीचे तीन बड़ी-बड़ी गोभियों पर दो बड़ी-बड़ी गोभियां रखी हुई थीं और उनके ऊपर एक और. लेखक की आंखों के सामने गोभियों का एक बड़ा त्रिकोण, अंग्रेजी के 'ए' अक्षर की भांति खड़ा था।

"ओह!" लेखक ने आह भरी. चेहरे की त्वचा चरचरा उठी, पीठ पर चींटियां-सी दौड़ती जान पड़ने लगीं. "आह!" लेखक ने एक और गहरी सांस छोड़ी. स्वयं को संयत कर चित्त एकाग्र करने का निश्चय किया. सोचा "सुखी परिवार के मकान में काफी कमरे होने चाहिए. एक कमरा भंडारे के लिए, जहां गोभी वगैरह रखी जा सकें. पति के स्वाध्याय के लिए अलग कमरा होना चाहिए. कमरे की दीवारों के साथ पुस्तकों से भरी अलमारियां हों, गोभी-ओभी वहां रखी जाने का क्या मतलब? अलमारियों में चीनी भाषा और विदेशी भाषाओं की भी पुस्तकें होनी चाहिए. 'आदर्श पति' नामक रचना की दो प्रतियां रहनी चाहिए. शयन का कमरा अलग होना चाहिए. सुघड़ पलंग पीतल का बना हो, या जरा सोफियाना सफेद लकड़ी का भी चल सकता है, जैसे लंबर एक जेल में बनाये जाते हैं. पलंग के नीचे और कमरे में बहुत सफाई..." लेखक की नजर अपनी खाट के नीचे चली गयी. खाट के नीचे रखा ईंधन चुक गया था. केवल मूंज की रस्सी का एक टुकड़ा पड़ा था. रस्सी ऐंठी हुई थी, मानो मरा हुआ सांप पड़ा हो.

"पौने बारह सेर...." लेखक को आशंका हुई कि उसकी खाट के नीचे अभी फिर ईंधन भर दिया जायेगा, जाने कितना ईंधन लाकर डाल दिया जायेगा. उसका सिर दर्द से फटने लगा. कुर्सी से उठा कि जाकर किवाड़ बंद कर ले. किवाड़ पर हाथ रखा ही था कि ख्याल आया, यह तो ज्यादती होगी. किवाड़ वैसे ही रहने दिये और धूल से भरा दरवाजे का मोटा पर्दा गिरा दिया. यह भी ख्याल आया, "इस तरीके से किवाड़ बंद करके अपने आपको कैदी बना लेने से बच गया हूं और किवाड़ खुले रहने की परेशानी से भी छुटकारा मिल गया है. ऐसा करना कनफ्यूशियस के मध्यम मार्ग के सिद्धांत के अनुरूप है."

"...हां, तो पति के स्वाध्याय के कमरे के किवाड़ सदा बंद रहते हैं." लेखक कुर्सी की ओर लौट आया और बैठकर सोचने लगा, "यदि कोई व्यक्ति मिलने आये तो उसे पहले किवाड़ पर दस्तक देकर भीतर आने की अनुमति लेनी चाहिए. उचित व्यवहार तो यही है. कल्पना कीजिये, पति स्वाध्याय के कमरे में है. पत्नी साहित्य-चर्चा के लिए भीतर आना चाहती है उसे भी किवाड़ पर दस्तक देकर भीतर आना चाहिए...परंतु एक बात निश्चित है—पत्नी गोभी भीतर नहीं लायेगी.

"आइए-आइए, तशरीफ लाइए, जानेमन!"

"परन्तु यदि पति बहुत व्यस्त हो, साहित्य-चर्चा के लिए समय न हो, तो क्या होगा? किवाड़ के बाहर खड़ी पत्नी की दस्तक सुनकर भी पति ऐसी उपेक्षा दिखा सकता है? हरगिज नहीं, यह नहीं हो सकता. सम्भव है, 'आदर्श पति' में ऐसा प्रसंग हो—वह निश्चय ही बहुत उत्कृष्ट उपन्यास होगा. इस लेख का पैसा आने पर वह पुस्तक जरूर खरीद लूंगा!"

चटाक!

लेखक चौंक पड़ा और उसकी कमर तन गयी. यह परिचित आहट थी. जान गया कि उसकी तीन वर्ष की बच्ची के मुंह पर उसकी मां का थप्पड़ चटाक से पड़ा होगा.

लेखक की कमर अब भी तनी हुई थी. उसने सोचा, 'सुखी परिवार' में सन्तान विवाह के कुछ समय बाद, काफी समय बाद होनी चाहिए. बच्चे न हों तो और भी अच्छा....शायद यह और भी सुविधाजनक हो कि दंपति किसी होटल में रहें और सारा इंतजाम उसी को सौंप दें. होटल के मालिक को खर्चा दे दिया करें और अकेले ही स्वच्छंद रूप से रहें." बच्ची के रोने का स्वर और भी ऊंचा हो गया. लेखक को कुर्सी छोड़नी पड़ी. पर्दा हटाकर कमरे से बाहर निकल रहा था तो ख्याल आया—"कार्ल मार्क्स जब अपना ग्रंथ 'पूंजी' लिख रहे थे तो उनके बच्चे आसपास रोते-चिल्लाते रहते थे. फिर भी उन्होंने ग्रंथ को पूरा किया, अवश्य ही असाधारण आदमी रहे होंगे..." लेखक बाहर आया, बरामदे का दरवाजा खोला. पैराफीन की गंध नाक में चढ़ गयी. बच्ची दाहिनी ओर फर्श पर औंधे मुंह पड़ी रो रही थी. पिता को देखकर वह और जोर से चीख उठी.

"अरे, अरे, क्या हुआ, रोती क्यों है? अच्छी बिटिया कहीं रोती है!" लेखक बिटिया को उठाने के लिए झुक गया. बिटिया को उठाकर उसने घरवाली की ओर देखा. घरवाली बायें दरवाजे के समीप दोनों हाथ कमर पर टिकाये क्रोध से लाल-पीली होकर तनी खड़ी थी, मानो व्यायाम के लिए तत्पर खड़ी हो.

"यह भी मेरे लिए नयी मुसीबतें खड़ी करती रहती है! किसी काम में मदद नहीं करती. जब देखो शरारत. लालटेन ही तोड़ दी. अब सांझ को रोशनी कैसे होगी?...."

"अच्छा, अच्छा, हो गया, चुप करो, रोते नहीं हैं." लेखक ने घरवाली के क्रोध की ओर ध्यान नहीं दिया. बिटिया को उठाकर भीतर ले गया. उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरकर समझाने लगा, "अच्छी बिटिया कहीं ऐसे रोती है!" लड़की को फर्श पर खड़ा कर दिया. कुर्सी खींच ली और बैठ गया. बिटिया को घुटनों में लेकर फिर बहलाने लगा, "अच्छी बिटिया कहीं ऐसे थोड़े रोती है. अच्छा, बताओ बिलैया मुंह कैसे धोती है? हम बतायें?" लेखक ने दोनों हथेलियां मुंह के सामने कर जीभ निकाल दूर से ही हथेलियों को चाटने का संकेत किया और फिर जैसे बिल्ली मुंह धोती है, हाथों से चेहरे को पोंछने लगा.

"आहा! बिल्ली, बिल्ली है." लड़की हंसने लगी.

"यह बात! बिल्ली को देखो." लेखक ने बिल्ली-नहान किया और फिर लड़की की ओर देखा. बच्ची खूब हंस रही थी. उसकी पलकों में अब भी आंसू लटके हुए थे, "कैसा भोला-भाला मुंह है. पांच साल पूर्व इसकी मां भी ऐसी ही लगती थी," लेखक सोचने लगा. "इसकी मां के लाल होंठ बिलकुल ऐसे ही थे, चेहरा भी ऐसा ही था. अभी इसका चेहरा छोटा है. कई वर्ष पहले के जाड़े की बात थी. खूब उजला-सुहावना दिन था. लेखक ने नवयुवती से कहा था कि हर किस्म की बाधा को पार करने उसके लिए हर तरह की कुरबानी को तैयार है. नवयुवती ने ऐसी ही सरल मुस्कान से, पलकों में आंसू लिये उसकी ओर देखा था." याद आते ही नशा-सा छा गया, सिर उड़ने-सा लगा.

"प्यारे-प्यारे होंठ." लेखक ने सोचा.

घरवाली ने दरवाजे का पर्दा हटा दिया. वह ईंधन कमरे में ला रही थी.

लेखक ने अपने आपको संभाला. बिटिया पलकों में आंसू लिये उसकी ओर देख रही थी, उसके प्यारे-प्यारे लाल-लाल होंठ खुले हुए थे. "होंठ..." लेखक की दृष्टि कमरे में ईंधन लाती पत्नी की ओर चली गयी. उसने नजर बचा ली. "....बस फिर वही पांच पंजे पच्चीस, नौ नयां इक्यासी, वही नोन-तेल-लकड़ी!...बुझी-बुझी दो आंखें..." लेखक ने उलझन-सी अनुभव कर मेज पर पड़े रही लकीरों वाले कागज को उठा लिया. कागज पर कहानी का शीर्षक लिखा हुआ था. शीर्षक के नीचे ईंधन के दाम का हिसाब लगाने के लिए कुछ आंकड़े लिखे थे. लेखक ने कागज को मुट्ठी में लेकर मरोड़ डाला. फिर उसे खोलकर सीधा किया और उससे लकड़ी की नाक और आंसू पोंछ दिये, "जाओ बिटिया, तुम खेलो." लड़की को दरवाजे की ओर धकेलकर कागज को मेज के नीचे रखी कूड़े की टोकरी में फेंक दिया.

लड़की चुपचाप बाहर चली जा रही थी. लेखक के मन में फिर स्नेह उमड़ आया, आंखें बिटिया की ओर चली गयीं. कानों में खाट के नीचे ईंधन ठूंसे जाने की आहट आ रही था. एकाग्र होने के लिए वह मेज की ओर घूम गया. नेत्र मूंद लिये. मस्तिष्क से दूसरे सब विचारों को निकालकर स्थिर और शांत होने का यत्न करने लगा.

लेखक की मुंदी हुई आंखों के सामने एक बड़ा-सा, गोल-गोल, चित्तीदार फूल घूम गया, जो बीच से नारंगी रंग का था. यह फूल उसकी बायीं आंख के बायीं ओर से दायीं ओर जाने लगा और सहसा गायब हो गया. फिर एक खूब चटकीला फूल तैरने लगा, जो बीच में गहरे हरे रंग का था; और अंत में फिर वही बड़ी-बड़ी पातगोभियों का तिकोना ढेर-अंग्रेजी भाषा के बहुत बड़े 'ए' अक्षर की तरह. □

● लू शुन का भाषण

साहित्य को अपनी जड़ें क्रांति में से तलाशनी होंगी

''कोई भी दल चिरस्थायी नहीं होता. जिस आगत की आहट है, वह एक दूसरा खूनी युद्ध है!'' साहित्य और क्रांति के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज.

जब से कामन ताङ ने सहयोग त्याग कर कम्युनिस्टों को नष्ट करने की नीति अपनायी है, यह कहा जाने लगा है कि उसकी नीति तो पहले ही से उन्हें नष्ट करने की थी, वह तो सिर्फ उत्तरी अभियान के सफल होने तक उन्हें इस्तेमाल कर रही थी. पर मैं इस मत से सहमत नहीं हूं. कामन ताङ के बहुत से प्रमुख सदस्य कम्युनिज्म के हक में थे, इसका प्रमाण यह है कि वे अपने बच्चों को शिक्षार्थ रूस भेजने के लिए उत्सुक थे और चीनी अपने बच्चों को इतना अधिक प्यार करते हैं कि वे उन्हें नष्ट होने का प्रशिक्षण कभी नहीं देंगे. अलबत्ता इन प्रमुख व्यक्तियों के मन में एक गलतफहमी थी, उनका ख्याल था कि चीन के कम्यूनिस्ट हो जाने पर उनकी शक्ति, संपत्ति और रखैलों में वृद्धि होगी या फिर यह कि उनकी हालत पहले से बुरी नहीं होगी.

हमारी एक पौराणिक कथा है कि कोई दो हजार बरस पहले मिस्टर ल्यू ने अपनी असाधारण वीरता से अमरत्व प्राप्त कर लिया था और वह अपनी पत्नी के साथ स्वर्ग में जा सकता था.

लेकिन पत्नी ने जाने से इनकार किया. कारण वह अपने पुराने घर, मुर्गी-खाना और कुत्ते से अलग नहीं होना चाहती थी. मिस्टर ल्यू ने देवताओं से पुनः प्रार्थना की कि वे उसके घर, मुर्गी-खाना और कुत्ते को भी स्वर्ग में जाने दें और वे भी वहां जाकर अमर हो गये. मगर यह इतना बड़ा परिवर्तन कोई परिवर्तन नहीं था. अगर ये भद्रजन कम्यूनिस्ट राज्य में भी अपनी पुरानी शानो-शौकत बनाये रखें और इससे अधिक विलासिता का जीवन जी सकें तो वे निश्चित रूप से कम्यूनिज्म को पसंद करेंगे.

लेकिन जब बाद की घटनाओं से पता चला कि कम्यूनिज्म देवताओं जैसा उदार नहीं है तो उन्होंने कम्यूनिस्टों को नष्ट करने का निश्चय कर लिया. सत्ताधारी चूंकि यह महसूस कर रहे थे कि युवा पीढ़ी ने उन्हें गुमराह किया है, उन्हें अपने-आपको युवा पीढ़ी के लहू में नहाकर पवित्र बनाना था. पर बहुत से युवक जो नीति परिवर्तन से अवगत नहीं थे, सोवियत रूस में अपनी शिक्षा पूरी करके मंगोलिया के रास्ते ऊंटों पर सवार खुशी-खुशी स्वदेश लौटे. मुझे एक विदेशी पर्यटक की याद आती है जो इस दृश्य से बहुत दुखी थी, वह कहती थी, युवक नहीं जानते थे कि उनके अपने ही देश में फांसी के फंदे उनका इंतजार कर रहे हैं.

हां, फांसी के फंदे. पर फांसी इतनी बुरी नहीं. आपके गले में फांसी का फंदा आपके साथ विशिष्ट व्यवहार का द्योतक है. फिर प्रत्येक व्यक्ति तो फांसी का फंदा नहीं चूम लेता क्योंकि कुछ लोग अपने फांसी चढ़ने वाले मित्रों के साथ गद्दारी करके बच निकलते हैं. यह उनके पश्चाताप का ठोस प्रमाण है, और पश्चाताप करने वाले भद्रजनों की श्रेणी में आ जाते हैं.

तब वे तमाम कम्यूनिस्ट जिन्होंने पश्चाताप नहीं किया, गोली मार देने लायक अपराधी बन गये. इन अपराधियों में से कुछ लोगों के लिए नया धंधा जुटा पर क्योंकि वे एक ऐसी वस्तु थे, जिसे बाजार में बेचा जा सकता था, स्कूल के किसी झगड़े अथवा प्रेम-प्रतिद्वंद्वता में एक पक्ष को कम्यूनिस्ट अर्थात् अपराधी कह देने से मामला सहज में निपट जाता था. अगर आप किसी धनी कवि से तर्क करें तो वह चट इस निष्कर्ष पर पहुंचता है : ''कम्यूनिस्ट धनियों का विरोध करते हैं, चूंकि मेरे पास है, इसलिए वह मेरा विरोध करता है, इसलिए वह कम्यूनिस्ट है.'' वह सोने के रथ पर सवार घर लौटता है.

लेकिन युवा क्रांतिकारियों के रक्त ने क्रांतिकारी साहित्य के अंकुरों को सींचा है, इसलिए वह और अधिक क्रांतिकारी बन गया है, चूंकि सरकार में भी कुछ ऐसे युवक हैं, जिन्होंने विदेश में शिक्षा प्राप्त की है या चीन ही में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वे इस बात से अवगत हैं, पहले वे किताबों पर पाबंदी लगाने का सामान्य तरीका इस्तेमाल करते थे, आखिर लेखकों की हत्या करने, उन्हें मौत के घाट उतारने पर उतर आये—सबक सिखाने के लिए पांच युवा वामपक्षी लेखकों की हत्या की गयी, मगर इसकी घोषणा नहीं की गयी क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा किये जाने पर उसकी चर्चा नहीं होनी चाहिए. अगले
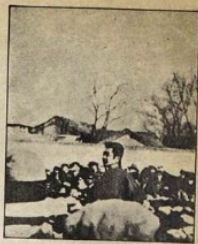
● लू शुन : बेइजिंग में भाषण—१९२९

लोग बहुत पहले कह गये हैं : ''आप घोड़े पर सवार होकर राज्य स्थापित कर सकते हैं, पर घोड़े पर चढ़े-चढ़े उस पर शासन नहीं कर सकते.'' क्रांतिकारी साहित्य को मिटाने के लिए साहित्यिक शस्त्र प्रयोग में लाते हैं.

जो नया शस्त्र ईजाद हुआ है उसका नाम है 'राष्ट्रीय साहित्य', इसके लेखकों ने अलग-अलग लोगों के रक्त का अध्ययन करके निर्णय लिया है कि एक ही रंग के लोग आपस में न लड़ें. भूरे रंग के मजदूर भूरे रंग के धनियों से न लड़ें, बल्कि वे सफेद रंग के मजदूरों से लड़ें. उन्होंने चंगेज खां को अपना आदर्श बनाया है, यह कहते हुए कि उसके पोते-बातूखान ने भूरे रंग के मंगोलों को लेकर कैसे रूस पर आक्रमण किया, कैसे उसकी संस्कृति नष्ट की और कैसे भद्रजन तथा सामान्यजन को गुलाम बनाया.

सितंबर 1931 में हमारे उत्तर पूर्व के तीन राज्यों पर जापानियों द्वारा कब्जा चीनियों के दूसरों का अनुसरण करके सोवियत संघ को नष्ट करने का मार्ग प्रशस्त करता है, इससे हमारे राष्ट्रवादी लेखकों को संतुष्ट होना चाहिए लेकिन सामान्य नागरिकों के लिए अपने उत्तर-पूर्व के तीन राज्यों की क्षति सोवियत संघ के भावी विनाश की अपेक्षा कहीं महत्वपूर्ण है और वे जापान के विरुद्ध हैं, यह देखकर राष्ट्रवादी लेखकों ने भी अपना रवैया बदला, दुख और विषाद की मुद्रा धारण की. बहुत से उत्साही युवकों ने नानकिङ जाकर प्रदर्शन किया और सशस्त्र प्रतिरोध की मांग की. निस्संदेह उन्हें मुसीबतों का सामना करना पड़ा. उन्हें नानकिङ जाने वाली गाड़ियों पर सवार होने से रोका गया, वे कई दिन तक खुले में कैंप लगाये पड़े रहे और कितने ही पैदल गये. नानकिङ में पहले से प्रशिक्षित डंडा, हंटर और पिस्तौलों से लैस 'नागरिकों' से उनका स्वागत किया और उन्हें निर्दयता से पीट-पीटकर वापस भगाया था. कईयों का पता तक नहीं चला और कई एक डूब गये. अखबारों का कहना है कि वे अपने-आप नदी में कूद गये थे.

तब राष्ट्रवादी लेखकों का रुलाने बहाना बंद हुआ और वे अपना कोई भी चिन्ह छोड़े बिना ऐसे लुप्त हुए जैसे चिता पर शोक व्यक्त करने वाले हो जाते हैं. यह शांघाई के शोक जुलूस की आवृति थी. वे ऐसे गायकों और लोगों की टोली की तरह आये जो ऐसे रोते हैं जैसे गा रहे हों, लेकिन उनका उद्देश्य दुख को इतना गहरा दफनाना होता है कि उसे हमेशा-हमेशा के लिए भुला दिया जाये, यह उद्देश्य पूरा हुआ और हर कोई बिखर गया, फिर न शोक न जुलूस.

लेकिन कम होने के बजाय क्रांतिकारी साहित्य बढ़ा, उसकी तरक्की हुई और उसके प्रति पाठक के विश्वास में वृद्धि हुई.

तब विरोधी पक्ष ने 'तीसरी किस्म' ईजाद की. ये लोग निश्चित रूप से वामपक्षी नहीं थे और दक्षिणपक्षी भी नहीं जान पड़ते थे—बीच की कोई चीज थे. उनका कहना था कि साहित्य शाश्वत है जबकि राजनीतिक वातावरण क्षणिक और अस्थायी है. इसलिए साहित्य को राजनीति से न जोड़ा जाये. अगर जोड़ा जायेगा तो साहित्य अपने शाश्वत मूल्य खो बैठेगा और चीन अमर ग्रंथों से वंचित रहेगा. यद्यपि यह 'तीसरी किस्म' वाले साहित्य के प्रति निष्ठावान थे, पर वे अमर ग्रंथों की रचना करने में अक्षम रहे. क्यों?

'तीसरी किस्म' के भद्रजनों ने सरकार द्वारा अवैध घोषित पुस्तकों और लेखकों की हत्या पर इसलिए टिप्पणी नहीं की कि यह राजनीति थी. इस बारे में कुछ कहने से उनके साहित्य का शाश्वत मूल्य नष्ट होता था. इसके अलावा जिन्होंने 'चीनी साहित्य' के 'बच्चुड़ों' को मौत के घाट उतारा उन्होंने 'तीसरी किस्म' वालों की अमर और महान कृतियों की रक्षा की.

उनकी दुर्बल चिल्ला-पों भी एक तरह का हथियार ही थी, पर वे क्रांतिकारी साहित्य को पराजित करने में स्वभावतः कमजोर थे. परिणाम यह कि जब 'राष्ट्रवादी' अपनी नैसर्गिक मौत मर गये और 'तीसरी किस्म' वाले भी उन्हीं की तरह दफना दिये गये तो सरकार ने असली हथियारों का इस्तेमाल किया.

नवंबर 1933 में गुंडों ने चिहवा फिल्म कंपनी पर अचानक हल्ला बोला और उसे तहस-नहस कर दिया. आक्रांता सुसंगठित थे. व्हिस्ल बजा उन्होंने अपनी कार्रवाई शुरू कर दी, दूसरा व्हिस्ल बजा तो उन्होंने हाथ रोक लिया और भाग गये. वे पर्चे भी फेंक गये थे जिनमें इस दंड का कारण यह बताया गया था कि कंपनी कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा इस्तेमाल हो रही थी. उनका यह दंडाभिमान फिल्म कंपनी तक ही सीमित नहीं रहा, प्रकाशन-गृह भी उसकी लपेट में आ गये. कई बार गुंडों की पूरी टोली ने हल्ला बोलकर सब कुछ नष्ट कर दिया और कई बार पत्थर फेंककर खिड़कियों के वे शीशे तोड़ डाले जिनमें से हर एक का मूल्य दो सौ डालर था. हर मरतबा कारण यही था कि प्रकाशन-गृह कम्यूनिस्टों द्वारा इस्तेमाल होता था. कीमती शीशा के टूट जाने से मैनेजरों को बड़ा दुख हुआ. चंद रोज बाद कुछ 'लेखक' अपनी 'महान कृतियां' बेचने उनके पास गये. मैनेजर जानते थे कि उन्हें कोई नहीं पढ़ेगा, फिर भी उन्हें खरीदना पड़ा. कारण यह कि उनका मूल्य एक शीशे के मूल्य से अधिक नहीं था और उन्हें खरीदने से पत्थरबाजी तथा खिड़कियों की मरम्मत से छुटकारा होता था.

प्रकाशन गृहों पर आक्रमण का हथियार सफल रहा

चंद पत्थर फेंक देना काफी नहीं था. केंद्रीय प्रचार समिति ने अवैध पुस्तकों की लंबी सूची तैयार की, जिनकी संख्या 149 थी. कहने की जरूरत नहीं कि अधिकांश वामपक्षी चीनी लेखकों की पुस्तकें अवैध घोषित कर दी गयी जिनमें अनुवाद भी शामिल थे. कुछ उदाहरण लीजिए : गोर्की, लुनाचर्स्की, फेदिन, फीदियेव, सेराफिमोविच और आप्टन सिक्लेयर, यहां तक कि मीट्रलिंक, सोलोगुब और स्ट्रिंडबर्ग को भी नहीं बख्शा गया.

निस्संदेह प्रकाशकों के लिए यह कठिन स्थिति थी. कुछेक ने अपनी पुस्तकें तुरंत जलाने के लिए सौंप दीं. दूसरों ने बच निकलने का प्रयास किया. अफसरों से बात चलायी और कुछ पुस्तकों को इस सूची से निकलवा लिया. भविष्य में कठिनाई को कम करने के लिए अफसरों और प्रकाशकों की मीटिंग हुई, इस मीटिंग में 'तीसरी किस्म' के कुछ लेखकों ने जो पत्रिकाओं के संपादकों की हैसियत से आये थे, अच्छी कृतियों और प्रकाशकों के धन की बचत के लिए जापानी ढंग अपनाने का सुझाव रखा. छपने से पहले पांडुलिपियां सेंसर की जायें ताकि जो लेखक वामपक्षी नहीं है, उन्हें वामपक्षी कहकर उनकी कृतियों को अवैध घोषित न किया जाये और प्रकाशक भी धन की बरबादी से बच सकें. यह सुझाव सबको पसंद आया और पास हो गया, चाहे महान बातूखान के पुराने ढंग से इसका कुछ भी ताल्लुक नहीं था.

और इस पर तुरंत ही अमल भी शुरू हो गया. गत जुलाई में पुस्तकों और पत्रिकाओं को सेंसर करने के लिए शांघाई में एक कमेटी बना दी गयी है. इस से कितने ही लेखकों की बेरोजगारी दूर हुई और सेंसर की अधिकांश कुर्सियां उन क्रांतिकारी लेखकों के जिन्होंने पश्चाताप कर लिया था, और 'तीसरी किस्म' के उन लेखकों के जो साहित्य और राजनीति में किसी भी प्रकार के संबंध का विरोध करते हैं, हाथ लगीं.

जापान को उदाहरण बनाना उसकी भूल ही सही. यह तो सच है कि वे चाहे जापान में वर्ग संघर्ष की बात करने की मनाही है, पर वे इस बात से तो इनकार नहीं करते कि दुनिया में वर्ग संघर्ष जारी है, मगर चीन में वर्ग संघर्ष के अस्तित्व से इनकार किया जाता है, उनका कहना है कि यह कार्ल मार्क्स के दिमाग की उपज मात्र है और इस पर पाबंदी लगाना सत्य की रक्षा करना है. यह सच है कि जापान में पुस्तकों और पत्रिकाओं को सेंसर किया जाता है पर जो पैरे काटे जाते हैं उनकी जगह खाली छोड़ दी जाती है ताकि पाठक तुरंत समझ ले कि यहां सेंसर की कैंची चली है. मगर चीन में खाली जगह छोड़ने की इजाजत नहीं ताकि मूल लेखन बिना कटा जान पड़े और पाठक समझे कि आलेख पूर्ण है, खुद लेखक ने ही अंट-शंट लिखा है. फ्रिचे, लुनाचर्स्की और दूसरों को भी बख्शा नहीं गया. आज चीनी पाठक उनके बारे में भी अंट-शंट लिखने की शिकायत करता है.

अब स्थिति यह है कि प्रकाशक का धन सुरक्षित है और 'तीसरी किस्म' का झंडा गायब हो गया है. क्योंकि वे पर्दों के पीछे से लेखकों को सूली तक पहुंचाने का काम सरंजाम दे रहे हैं. और उनका प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य लोप है, क्योंकि वे सेंसर की कैंची चलाने और जीवन-मृत्यु का निर्णय करने वाली शक्ति का प्रयोग करने में व्यस्त हैं. पाठक बस,यही देखते हैं कि पत्रिकाओं का बुरा हाल है, आलेख घिसे-पिटे होते जा रहे हैं और दूसरे देशों के विख्यात प्रगतिशील लेखक सहसा मूर्ख बन गये हैं.

लेकिन दरअसल, साहित्यिक मोर्चे पर विभाजन पहले से कहीं तीखा है. कोई भी दल चिरस्थायी नहीं होता. जिस आगत की आहट है, वह एक दूसरा खूनी युद्ध है. □

अनुवाद : हंसराज रहबर

साहित्य की आलोचना

लेखन के दौरान मैंने कभी आलोचना के रुख पर गौर नहीं किया. उस दौर में चीनी रचनाकारों और आलोचकों में खास फर्क नहीं था. तब आलोचक अगर तारीफ का रवैया नहीं रखते थे तो पूरी तरह बुराइयों पर उतर आते थे. यानी, आप आलोचकों के रवैये पर गौर करें तो दो ही चीजें होती थीं—या तो रचनाकार खुद को महान मान बैठें या फिर उदास होकर आत्महत्या कर लें. दरअसल, आलोचना रचनाकार के लिए तभी काम की चीज हो सकती है, जब आलोचक का नजरिया तारीफ और बुराई के मामले में रचना को लेकर एकदम साफ हो. ● लू शुन

• लू शुन की कहानियां : दो

कल सुबह

चौथे शान की बीवी बहुत सीधी-सादी थी...पर इतना वह भी जानती थी कि मरे हुए लोग फिर जिंदा नहीं होते और वह अपने बाओअर को फिर कभी नहीं देख सकेगी. बावजूद इसके आखिर वह क्या चीज है जो उसे आह भरकर अपने बेटे से बातचीत करने पर मजबूर कर देती है...!

"क्या बात है? जरा भी आवाज नहीं आ रही. बच्चे को कुछ हो तो नहीं गया?"

लाल नाक वाले गांग ने अपने सिर से बगल के मकान की तरफ इशारा करते हुए कहा. उसके हाथ में पीली शराब का एक प्याला था. अबू ने अपना शराब का प्याला नीचे रखते हुए गांग की पीठ पर एक जोरदार धौल जमाया और मोटी आवाज में बुदबुदाया, "साले...फिर भावुक होने लगे."

लूझेन दूर-दराज का बाबा आदम के जमाने का एक कस्बा था. लोग दिन डूबते ही दरवाजों की कुंडी लगाकर सो जाते थे. आधी रात तक सिर्फ दो मकानों में रोशनी रहती और उसके निवासी जागते होते. एक था समृद्धि शराबघर, जहां थोड़े से पियक्कड़ देर रात तक गल-गपाड़ा करते और पीते रहते और दूसरा था पड़ोस का वह मकान, जिसमें चौथे शान की बीवी रहती थी. दो साल पहले ही वह विधवा हुई थी और अपना और बच्चे का पेट पालने के लिए वह देर रात तक जागकर सूत कातती रहती थी.

यह सच था कि पिछली कई रातों से कताई की आवाज नहीं आ रही थी, पर चूंकि आधी रात को सिर्फ दो मकानों में लोग जागते होतेथे, इसलिए स्वाभाविक था कि बूढ़ा गांग और उसके साथी ही यह बात लक्ष्य कर सकते थे कि चौथे शान की बीवी के मकान से सूत कातने की आवाज आ रही है या नहीं.

पीठ पर जोरदार धौल खाकर बूढ़े गांग ने, जो एकदम सामान्य दिख रहा था, अपने प्याले से शराब की एक बड़ी घूंट भरी और एक लोकधुन की तर्ज पर सीटी बजाने लगा.

इस बीच चौथे शान की बीवी अपने इकलौते बाओअर को हाथों में लिये अपने बिस्तर के एक किनारे बैठी थी. उसका चरखा फर्श पर पड़ा था. लैंप की धुंधली रोशनी बाओअर के चेहरे पर पड़ी तो बुखार की तपन के बावजूद वह नीला पड़ता दिखाई दिया.

वह सोच रही थी, "मैंने मठ में पूजा चढ़ाकर देवताओं से अपने बच्चे की बीमारी अच्छी होने की प्रार्थना की है. पुजारी ने बच्चे को अच्छा करने का

दावा किया है, पर अगर वह अच्छा न हुआ तो मैं क्या करूंगी? मुझे इसे डा. हो के पास ले जाना होगा. हो सकता है बाओअर की तबीयत रात में ज्यादा खराब हो रही हो. सूरज उगने पर शायद बुखार उतर जाये और इसे सांस लेने में तकलीफ न हो, बहुत-सी बीमारियां रात को बढ़ जाती हैं."

चौथे शान की बीवी एक सीधी-सादी औरत थी. वह नहीं जानती थी कि यह 'लेकिन' शब्द कितना खतरनाक होता है. इस शब्द 'लेकिन' की ही वजह से बहुत-सी बुरी चीजें अंततः अच्छी हो जाती हैं और अच्छी चीजें बुरी. गर्मियों की रातें छोटी होती हैं.बूढ़े गांग और उसके पियक्कड़ साथियों की लोकधुन समाप्त होते न होते आसमान पूरब में साफ होने लगा और थोड़ी देर बाद ही खिड़की की सलाखों के बीच से छनकर रोशनी कमरे में आ पहुंची.

सुबह का इंतजार जितना आसान दूसरों के लिए था, उतना चौथे शान की बीवी के लिए न था. समय बहुत धीमे गुजर रहा था. हर सांस जो बाओअर के मुंह से निकलती, कम से कम एक साल लंबी लगती, पर अब रोशनी फैल चुकी थी और लैंप की रोशनी बहुत मद्धिम पड़ गयी थी. सांस लेने की कोशिश में बाओअर के नथुने फड़क उठते.

चौथे शान की बीवी ने बड़ी मुश्किल से अपनी रुलाई रोकी क्योंकि उसे पता था कि यह लक्षण अच्छा नहीं है, पर वह क्या करे, वह सोचने लगी. उसकी एकमात्र आशा डा. हो था. वह एक सीधी-सादी औरत थी, पर उसमें इच्छाशक्ति की कमी न थी. वह उठ खड़ी हुई और आलमारी में से अपनी कुल पूंजी—तेरह चांदी के डालर और एक सौ अस्सी तांबे के सिक्के ले लिये. अपनी जमा पूंजी जेब में रख कर उसने कमरे में ताला लगाया और बाओअर को लेकर जितनी तेज चल सकती थी, डा. हो के घर की तरफ चल पड़ी.

बहुत तड़के पहुंचने पर भी उसका नंबर पांचवां था, क्योंकि चार मरीज वहां पहले से ही बैठे थे. उसे चालीस सैंट पर्ची बनवाने के लिए देने पड़े. डा. हो ने बाओअर की नब्ज देखने के लिए अपनी दो उंगलियां आगे बढ़ायीं. डा. की उंगलियां निहायत पतली थीं और करीब चार इंच बड़े नाखून उन पर शोभा पा रहे थे. चौथे शान की बीवी मन ही मन गुनने लगी, "निश्चय ही मेरा बच्चा जिंदा रहेगा."

इस विचार के बावजूद उसकी घबराहट बनी रही और उसने डा. से कांपती आवाज में सवाल किया, "डा.,मेरे बच्चे को क्या हुआ है?"

"भोजन की नली में 'आब्सट्रक्शन' (रुकावट) है."

"क्या रोग खतरनाक है? वह बच तो..."

डा. ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा, "ये दो दवाइयां दो, फिर देखेंगे"

"अग्नि का तत्व धातु-तत्व पर हावी हो जाता है..." अपना वाक्य अधूरा छोड़कर डा. हो ने आंखें मूंद लीं तो चौथे शान की बीवी ने और कुछ पूछना उचित न समझा. डा. के दूसरी ओर एक तीस-बत्तीस वर्ष का आदमी बैठा था, उसने दो पर्चियां लिखकर तैयार कर दीं.

उसने चौथे शान की बीवी से कहा, "लो, यह बाल जीवन बटी है." और कागज के एक कोने पर लिखे अक्षरों की तरफ इशारा करते हुए उसने कहा, "यह दवा तुम्हें जिआ परिवार के मुक्तिदाता दवाखाना में मिलेगी, और कहीं नहीं मिलेगी."

चौथे शान की बीवी ने पर्ची ले ली और बाहर निकल आयी. वह सीधी-सादी औरत थी, पर यह जानती थी कि डा. हो का मकान मुक्तिदाता दवाखाना और उसका घर एक त्रिकोण के तीन कोणों पर स्थित हैं और घर जाने के पहले मुक्तिदाता दवाखाना जाना ज्यादा उचित होगा.

मुक्तिदाता दवाखाना के सहायक ने भी पर्ची पढ़ते-पढ़ते अपने लंबे नाखून उसकी तरफ उठाये और फिर बाल जीवन बटी की पुड़िया बांध कर रख दी. बाओअर को गोद में उठाये चौथे शान की बीवी इंतजार करती रही. अचानक बाओअर ने अपनी एक नन्हीं बांह फैलायी और अपनी मां के खुले बालों की एक लट अपनी मुट्ठी में कसकर थाम ली. ऐसा पहले कभी उसने नहीं किया था, इसलिए उसकी मां आतंकित हो उठी.

अब सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था. दवा की पुड़िया थामे और बाओअर को उठाये जैसे-जैसे वह आगे बढ़ रही थी, उसे बच्चे का वजन बढ़ता मालूम हो रहा था. बच्चा बीच-बीच में छटपटा रहा था, जिससे रास्ता और लंबा लग रहा था. यहां तक कि सड़क के किनारे की एक कोठी की सीढ़ियों पर दम लेने के लिए उसे बैठना पड़ा. उसके कपड़े शरीर से इस कदर चिपक रहे थे कि उसने महसूस किया कि उसे बुरी तरह पसीना आ रहा है, मगर बाओअर गहरी नींद में लग रहा था. जब वह फिर सीढ़ियों पर से उठी और घर की ओर कदम बढ़ाये तो उसे बच्चा और भी वजनी लगा.

तभी किसी ने पास आकर कहा, "चौथे शान की पत्नी, लाओ, बच्चे को मैं ले चलता हूं."

उसने सिर उठाया तो उसे अबू दिखा. हां, वह अबू ही था. उसकी आंखों में अभी रात जागने की लाली भरी हुई थी.

हालांकि चौथे शान की बीवी बड़ी बेसब्री से किसी दयालु व्यक्ति की मदद का इंतजार कर रही थी, पर वह आदमी अबू हो, यह उसे पसंद न था, मगर अबू जिद करने लगा और उसके हाव-भाव से लग रहा था कि वह दरअसल उसकी मदद करना चाहता था. अबू के लगातार आग्रह करने पर वह मान गयी. अबू ने जब बच्चे और उसकी छातियों के बीच अपना हाथ बढ़ाया तो उसे अपने स्तनों पर से आग की लपट-सी गुजरती महसूस हुई. उसके कान लाल हो गये.

फिर वे दोनों करीब दो-ढाई फिट की दूरी पर आगे-पीछे चलने लगे. अबू कुछ-कुछ बोलता जा रहा था, जिनमें से अधिकांश का चौथे शान की बीवी ने कोई जवाब नहीं दिया. थोड़ी ही दूर गये होंगे वे कि अबू ने यह कह कर बच्चे को फिर उसकी गोद में डाल दिया कि उसे किसी के साथ खाने पर जाना है. अब घर दूर नहीं था. नौवीं वांग चाची सड़क के किनारे बैठी उसे पुकार रही थी.

"तुम्हारा बच्चा कैसा है चौथे शान की बहू?...डाक्टर के पास गयी थी क्या?"

"जी हां, वांग चाची, आप बुजुर्ग और अनुभवी हैं. आपने बहुत दुनिया देखी है. आप जरा इसे देखिए और बताइए तो कि आपकी क्या राय है?"

"हूं...."

"बताइए न?"

"हूं...ऊं."

नौवीं वांग चाची ने बाओअर का अच्छी तरह परीक्षण-निरीक्षण किया. फिर दो बार ऊपर-नीचे और दो बार अगल-बगल सिर हिलाया.

बाओअर को दवा की पहली खुराक देते-देते दोपहर हो गयी. चौथे शान की बीवी ने उसे ध्यान से देखा. वह पहले से शांत लग रहा था. तीसरे पहर उसने अचानक आंखें खोलीं और 'मां' कहा. फिर उसने आंखें मूंद लीं. जैसे वह सो रहा हो. ज्यादा देर नहीं हुई कि उसके माथे और नाक की कोर पर पसीना चुहचुहा आया. उसकी मां ने वह पसीना छुआ तो वह गोंद की तरह उसकी उंगलियों में चिपक गया.भयभीत होकर उसने उसकी धड़कन को हथेलियों से महसूस करने की कोशिश की और रो पड़ी.

थोड़ी देर के बाद बच्चे की सांस पूरी तरह रुक गयी. मां, जो अब तक सिसकियां भर रही थी, अब धाड़ें मारकर रो पड़ी. थोड़ी देर में ही लोग इकट्ठे हो गये. कमरे में नौवीं वांग चाची और अबू जैसे लोग और बाहर लाल नाकवाला गांग और समृद्धि शराबघर का मालिक. नौवीं वांग चाची ने निर्णय सुनाया कि नोटों की एक माला जलायी जानी चाहिए. फिर दो स्टूल और पांच कपड़े बतौर जामिन के रखकर उन्होंने सबके भोजन की व्यवस्था के लिए दो डालर उधार लिये. यह खाना उन सभी लोगों के लिए आ रहा था, जो वहां हाथ बटाने आये थे.

सबसे पहली समस्या थी ताबूत की. चौथे शान की बीवी के पास अभी भी चांदी की कान की बालियों का जोड़ा और सोने के पानी वाला चांदी का ही एक हेयरपिन था जिसे उसने समृद्धि शराबघर के मालिक को इसलिए दिया कि वह आधा नकद और आधा उधार पर ताबूत वाले के सामने उसकी ओर

से जामिन हो जाये और तावूत पाने में मदद करे. अबू ने भी मदद करने की इच्छा प्रकट की, पर नौवीं वांग चाची ने उसकी एक न सुनी. बड़ी मुश्किल से उन्होंने उसे दूसरे सवेरे ताबूत ढोकर लाने भर की इजाजत दी. "चुड़ैल खूसट!" अबू ने मन ही मन कहा और अपने होंठ चबाता खड़ा रहा. समृद्धि शराबघर का मालिक ताबूत लेने चला गया और शाम को यह सामचार लेकर वापस आया कि ताबूत बनवाना पड़ा है और वह कल सुबह के पहले तैयार नहीं हो पायेगा.

जब तक शराबघर का मालिक वापस आया, तब तक सभी मददगार अपना पेट भर चुके थे और चूंकि लुझेन एक पुराने ढंग का कस्बा था, लोग दिन डूबते ही अपने घरों को सोने चले गये. सिर्फ अबू समृद्धि शराबघर में पीता रहा और बूढ़ा गांग फटे गले से कोई राग अलापता रहा.

इस बीच चौथे शान की बीवी अपने बिस्तर के एक किनारे पर बैठी बिसूरती रही. बाओअर बिस्तर पर पड़ा था और चरखा फर्श पर पड़ा था. बहुत देर बाद जब चौथे शान की बीवी के आंसू सूखे तब उसने अपनी आंखें खोलीं और ताज्जुब से चारों तरफ देखा. यह सब असंभव है. उसने सोचा, "यह सब एक सपना है. कल सुबह जब मेरी नींद खुलेगी तो मैं बिस्तर में सो रही होऊंगी और बाओअर बड़े मजे में मेरी बगल में लेटा होगा. फिर वह आंखें खोलेगा और मुझे 'मां' कहकर एक चीते के बच्चे की तरह बिस्तर से नीचे कूदेगा."

बूढ़े गांग की लोकधुन कब की थम चुकी है और समृद्धि शराबघर की रोशनियां भी गुल हो गयी हैं. चौथे शान की बीवी टकटकी लगाये बच्चे के शव को शून्य दृष्टि से देख रही है, पर जो कुछ हो गया है, उस पर विश्वास नहीं कर पा रही है. एक कौवा कांव-कांव करने लगा, फिर बहुत से कांव-कांव कर उठे. पूरब में आसमान उजला हुआ, फिर खिड़की की दरारों में से चमकदार रोशनी की लकीरें कमरे में खिंच गयीं.

धीरे-धीरे सफेद रोशनी का रंग तांबई हो उठा और सूरज ऊपर चढ़ आया. चौथे शान की बीवी अभी भी उसी तरह बिना पलक झपकाये बैठी हुई थी. तभी दरवाजा किसी ने खटखटाया और पहले तो वह बुरी तरह चौंकी, फिर उठकर दरवाजा खोलने दौड़ पड़ी. एक अजनबी पीठ पर कुछ लादे खड़ा था और उसके पीछे खड़ी थी नौवीं बांग चाची.

ओह! तो यह ताबूत लाया है.

उस दिन तीसरे पहर से पहले ताबूत का ढक्कन बंद नहीं किया जा सका, क्योंकि चौथे शान की बीवी बच्चे का मुंह देखकर रोती जा रही थी और किसी भी तरह ढक्कन बंद करने नहीं दे रही थी. सौभाग्यवश नौवीं वांग चाची इंतजार करते-करते थक गयीं और उन्होंने आगे बढ़कर गुस्से से चौथे शान की बीवी का हाथ पकड़कर एक किनारे खींच लिया और इस बीच उन्होंने जल्दी से ताबूत का ढक्कन बंद कर दिया.

वास्तव में चौथे शान की बीवी ने अपने बाओअर के लिए वह सब कुछ किया, जो वह कर सकती थी. कुछ भी नहीं छोड़ा था. पिछली शाम उसने नोटों की माला हवन की थी और आज सुबह 'प्रभु की महती कृपा के मंत्रों' की उनचास पुस्तिकाओं का हवन किया था और उसे ताबूत में रखने के पहले उसे नये कपड़े पहनाये थे. और वे सभी खिलौने जो उसे पसंद थे—जैसे मिट्टी का आदमी, दो लकड़ी के बने कटोरे, दो बोतलें—उसके तकिये के पास रख दिये थे. नौवीं वांग चाची ने उंगलियों के पोरों पर गिनकर बहुत सावधानी से सभी रस्मों का जायजा लिया, और सारी रस्में पूरी पायीं.

जब दिन भर अबू का कोई पता न लगा तो समृद्धि शराबघर के मालिक ने 210 तांबे के सिक्के प्रति व्यक्ति के दर से दो कुली भाड़े पर ले लिये, जो ताबूत को कब्रिस्तान ले गये और एक कब्र खोदी. नौवीं वांग चाची ने चौथे शान की बीवी की खाना पकाने में मदद कि और जिस व्यक्ति ने भी अपनी उंगली उठायी थी या सिर्फ मुंह खोला था, उन सभी को खाना खिलाया गया जल्दी ही सूरज ने डूबने का इरादा किया और सभी मेहमानों ने बहाने-बहाने से स्पष्ट किया कि वे जाना चाहते हैं और वे सभी अपने अपने घर चले गये.

चौथे शान की बीवी को काफी देर तक चक्कर आते रहे, पर थोड़ा आराम करने के बाद वह शांत हुई. हालांकि तब भी उसे सब कुछ विचित्र लग रहा था. ऐसा कुछ उसके साथ हुआ था, जैसा पहले उसके साथ कभी नहीं हुआ और न ही भविष्य में होगा, उसने सोचा. जितना ही वह सोचती थी, उतनी ही चकित होती जा रही थी और एक दूसरी चीज उसे बड़ी अजीब लग रही थी कि एकाएक उसके कमरे में सन्नाटा बहुत गहरा हो उठा था.

वह उठी और लैंप जलाया. अब उसे कमरे में पहले से ज्यादा सन्नाटा महसूस हुआ. उजाले के बावजूद वह जैसे रास्ता टटोलती हुई दरवाजे तक गयी, उसे बंद किया और बिस्तर के एक किनारे बैठ गयी, जबकि उसका बेआवाज चरखा फर्श पर पड़ा रहा. उसने अपने को मजबूत किया और चारों ओर निगाह फिरायी. उसे लगा कि न तो वह बैठी रह पा रही है और न उठ ही पा रही है. न केवल कमरे में बेहद सन्नाटा था, बल्कि वह बहुत बड़ा लग रहा था और कमरे में रखी चीजें एकदम खाली-खाली लग रही थीं. फिर वह कमरा छोटा होने लगा और चारों ओर का खालीपन उसे इतनी ताकत से दबोचने लगा कि उसके लिए सांस लेना कठिन हो गया.

अब वह जान गयी थी कि उसका बाओअर सचमुच मर गया है. खाली कमरा अब उसे खाने को दौड़ने लगा तो उसने लैंप बुझा दिया और बिस्तर पर पड़कर बिसूरने लगी. उसे याद आया कि कैसे एक दिन जब वह सूत कात रही थी और बाओअर पास में बैठा अजवाइन से छौंकी मटर के दाने गुटक रहा था तो कुछ पल अपनी छोटी-छोटी चमकीली आंखों से उसकी तरफ घूरते हुए बाओअर ने एकाएक कहा था, "मां, पापा 'हुन डुन' बेचते थे न. मैं जब बड़ा होऊंगा तो मैं भी 'हुनडुन' बेचूंगा और ढेर से डालर कमाऊंगा और सारे डालर तुमको दूंगा."

ऐसे वक्त वह जो सूत कातती होती, उसकी एक-एक इंच लंबाई कितनी अर्थवान और जीवंत लगती थी, पर अब क्या होगा? चौथे शान की बीवी अपनी वर्तमान स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं सोच पा रही थी—जैसा कि आपसे कह चुका हूं, वह एक सीधी-सादी औरत थी. वह इसका क्या उपाय सोच सकती थी? वह तो सिर्फ यह जान रही थी कि उसका कमरा, बहुत बड़ा, बहुत सूना और बहुत नीरव लग रहा है.

भले ही चौथे शान की बीवी बहुत सीधी-सादी थी, पर इतना वह जानती थी कि मरे हुए लोग फिर जिंदा नहीं होते और वह अपने बाओअर को फिर कभी नहीं देख सकेगी. उसने आह भरी और फुसफुसायी, "बाओअर, मेरे बच्चे. मुझे विश्वास है कि तुम यहीं कहीं हो. कम से कम सपने में तुम अपना चेहरा मुझे दिखा जाया करो. फिर उसने अपनी आंखें मूंद लीं और चाहने लगी कि जल्दी नींद लग जाये, जिससे वह सपने में अपने बाओअर को देख ले. कमरे के सूनेपन, सन्नाटे और खालीपन के बीच उसे अपनी सांसें साफ सुनाई पड़ रही थीं.

आखिरकार चौथे शान की बीवी को नींद आ गयी और उसका कमरा बर्फ की तरह जम गया.

लाल नाकवाले बूढ़े गांग की लोकधुन थम चुकी थी और वह लड़खड़ाता हुआ समृद्धि शराब घर के बाहर आ गया था. उसने फिर तराना छेड़ा.

मेरी दिलरुबा
कितनी उदास.
कितनी अकेली...

अबू ने बूढ़े गांग का कंधा थाम लिया और नशे में धुत्त हंसते-खिलखिलाते प्रलाप करते वे आगे बढ़ गये.

चौथे शान की बीवी सो रही थी.

बूढ़ा गांग और दूसरे लोग जा चुके थे.

समृद्धि शराबघर के दरवाजे बंद हो चुके थे.

लुझेन कस्बे पर गहरा सन्नाटा और मुर्दनी छा गयी थी.

सिर्फ रात थी, जो कल सुबह में बदलने को आतुर चुपचाप भागती जा रही थी और अंधेरे में कुत्ते भौंक रहे थे. □

अनुवाद : डॉ. माहेश्वर

व्यंग्यकार महज कमजोरियों की तरफ इशारा करता है

व्यंग्य, दरअसल कैसा होना चाहिए? क्या यह जरूरी है कि व्यंग्यकार घटित सत्य पर ही कलम चलाये और पढ़ने वाले को चौंका कर रख दे! जिन विषयों पर अखबारनवीस बगैर ध्यान दिये आगे बढ़ जाते हैं...क्या उन पर भी बेहतर व्यंग्य-रचना की जा सकती है? व्यंग्य-लेखक को किन-किन खतरों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए.....? आइए देखें, लू शुन इन मसलों पर हमें क्या राय देते हैं–

■ लू शुन अपने पुत्र हेईंग के साथ

मैं यह मानता हूं कि यदि कोई रचनाकार किसी वर्ग विशेष की वस्तुस्थिति प्रस्तुत करने की नीयत से भाषा का तीखा इस्तेमाल कलात्मक ढंग से करता है तो जो रचना वह रचेगा, वह व्यंग्य कहलायेगी.

सत्य व्यंग्य का प्राण तत्व है. यह आवश्यक नहीं है कि लिखा गया घटित सत्य ही हो...जो कुछ हो, वह ऐसा हो कि असंभव न लगे. यही कारण है कि व्यंग्य में न तो धोखेबाजी होती है न ही बुरायी, न इसमें रहस्यों की परतें खुलती हैं न ही असाधारण किस्म की चौंकाऊ घटनाएं. यह संभव है कि बेहद सामान्य होने की वजह से हम ऐसी घटनाओं को विस्मृत कर देते हों...पर ये घटनाएं प्राय: घटती रहती हैं. कई बार ऐसी घटनाएं बेसिर पैर की भी होती हैं जो घृणास्पद भी लग सकती हैं. समाज के लिए यह घटनाएं इतनी सामान्य और रोजमर्रा की चीजें होती हैं कि कोई व्यक्ति इनसे चकित नहीं होता. पर यही घटनाएं जब प्रमुखता देते हुए पेश की जाती हैं तो बेहद चौंकाने वाली बनकर सामने आती हैं. मिसाल के तौर पर पश्चिम में बुद्ध की आराधना बेहद सामान्य-सी बात है...जबकि इससे कहीं ज्यादा साधारण घटना किसी सीधे-सरल आदमी को क्रोध आने की हो सकती है. पल भर का जीवन लिए यह घटनाएं अजाने रूप में घटती रहती हैं.

मान लीजिए व्यंग्य के जरिए कोई ऐसा स्थिति चित्र प्रस्तुत किया जाये जिसमें हवा में तैरता कोई युवक विपरीत आकृति में लेटकर नमस्कार कर रहा हो....तब ऐसे दृश्य दर्शक को तो अच्छे नहीं ही लगेंगे. स्वयं सर्जक भी उन्हें पसंद नहीं करेगा. कहा जा सकता है कि कोई इन स्थितियों को पहचानता तो है ही, यह भी मानता है कि ऐसा होता रहता है....पर यह सब मान लेने वालों की छवि अच्छी नहीं बनेगी. चालाकी से वे ऐसी चीजों में व्यंग्य के माध्यम से बात आगे बढ़ाते हैं. दरअसल, इस तरह का लेखन-कर्म जानबूझकर अपना संबंध इन गैर जरूरी चीजों से रखता है.

व्यंग्य का मजा तभी है जब वह इन तमाम चीजों को प्रमुखता देते हुए भी असली चीज निकाल कर सामने रख दे.

असावधान और सतही तौर पर प्रस्तुत वस्तु व्यंग्य नहीं बन सकती. इससे किसी को प्रभावित भी नहीं किया जा सकेगा. मिसाल के तौर पर मौजूदा साल की दो चीजें मुझे याद आ रही हैं—एक घटना यह है कि एक युवक फौज का अफसर बनकर लोगों को बेवकूफ बनाता रहा. जब यह युवक पकड़ा गया तो उसने अपराध कुबूल करते हुए लिखा कि यह सब उसने पेट भरने के लिए ही किया. दूसरी एक चोर से संबंधित घटना है. यह चोर विद्यार्थियों को फुसलाकर चोरी करने के तौर-तरीके सिखलाता था. विद्यार्थियों के अभिभावकों को सूचना मिली तो उन्होंने अपने बच्चों को घरों में रखना शुरू कर दिया. चोर को यह सब पता चला तो वह वहीं आतंकित करने जा पहुंचा.

अखबारों में इन हादसों पर किसी ने कुछ नहीं लिखा.

जाहिर है कि ये हादसे इतने गौरतलब नहीं समझे गये कि इन पर कोई कमेंट किया जाये.

मुझे यकीन है कि स्विफ्ट या गोगोल यदि इन हादसों पर कलम चलाते तो एक स्तरीय व्यंग्य तैयार हो सकता था.

बेहद सामान्य और आम लगने वाली स्थितियां भी व्यंग्य के लिए उपयोगी होती हैं. यह ठीक है कि व्यंग्य लिखने वाला उन लोगों की नजर में तो बुरा बनता ही है जो उसकी कलम के निशाने की परिधि में आते हैं...फिर भी व्यंग्य लिखने वाले की नीयत हरदम साफ रहती है. किसी वर्ग विशेष पर यदि कोई व्यंग्य-लेखक व्यंग्य करता है तो उसका यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि वह उसका खात्मा ही कर देना चाहता है....बल्कि वह तो उस वर्ग-विशेष की बेहतरी के लिए ही ऐसा करता है. ऐसा भी होता है कि जब तक कोई व्यंग्य लेखक उभर कर आये तब तक वह वर्ग लगभग अवसान के करीब जा पहुंचता है. तब कोई लेखक उस वर्ग विशेष को उबार नहीं सकता. यही वजह है कि ऐसी कोशिशें कई बार कामयाब होने की बजाय विपरीत प्रभाव भी छोड़ती हैं.

व्यंग्यकार दरअसल, महज कमजोरियों की तरफ इशारा करता है. यही वजह है कि विरोधी वर्ग इस सबका इस्तेमाल कारगर हथियार के रूप में कर लेता है. मैं कहना चाहता हूं कि विरोधी वर्ग को, व्यंग्य को वस्तुस्थिति चित्रण के रूप में स्वीकार करना चाहिए.

ऐसी कोई चीज व्यंग्य हो ही नहीं सकती जो एकदम निरर्थक हो...जो व्यक्ति को यह बताना चाहे कि दुनिया बेमतलब और बेकार है ऐसा लेखन तो बुरायी की श्रेणी में ही आयेगा. □

खोंग-ई-ची
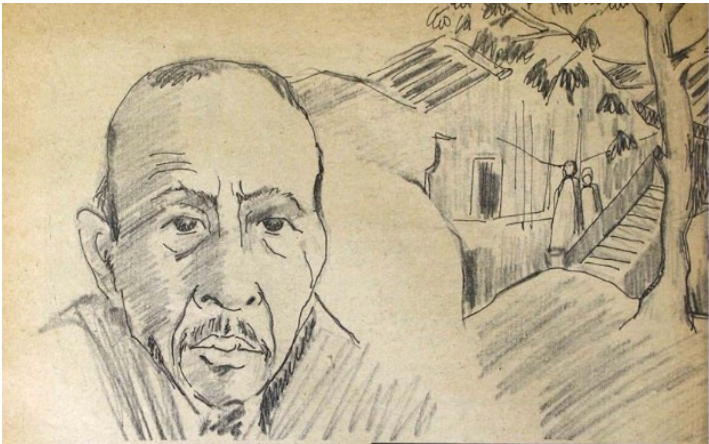
लूचिन की शराब की दुकानें चीन के अन्य स्थानों की अपेक्षा भिन्न हैं. ये सब सड़क के किनारे कोण-रूपी काउंटर पर आधारित होती है. मजदूरपेशा लोग काम से वापस आकर कभी यहां अपरान्ह और कभी शाम को शराब का एक प्याला चार सिक्कों में खरीद लिया करते हैं, लेकिन यह बीस वर्ष पहले की बात है. अब एक प्याला दस सिक्कों का पड़ता है. ये लोग काउंटर से बाहर खड़े-खड़े मदिरा-पान करते हैं. यदि एक सिक्का अधिक खर्च करें, तो बांस की नमकीन कोंपलें या सौंफ की महक में बसे मटरों की एक प्लेट शराब के साथ खाने के लिए खरीद सकते हैं. यदि बारह सिक्के हों तो उनके बदले में भुने हुए गोश्त की प्लेट मिल जाती है, लेकिन ये ग्राहक अधिकतर छोटी कमीज पहननेवाले गरीब वर्ग के सदस्य हैं, जो भला यह ठाठ-बाट कहां रख सकते हैं, लेकिन लंबे चोगे पहने हुए भद्रजन दुकान से पास वाले भीतरी कमरे के अंदर पधारते हैं और धीरे-धीरे मदिरापान का आनंद लेते हैं.

मैंने बारह वर्ष की आयु से कस्बे के मोड़ पर 'शीन खंग' नाम के मदिरालय में बेटर के रूप में काम शुरू किया था. मालिक का खयाल था कि शायद मैं उजड्ड और गंवार होने के कारण लंबे चोगोंवाले 'भद्रजन' को ढंग से भुगता न पाऊं. अतः मुझे बाहर के छोटे-मोटे कामों पर लगा दिया गया था. बाहर के छोटे कमीजोंवाले ग्राहकों से बात करना कठिन नहीं था, लेकिन उनमें बकबक झक-झक करनेवाले कुछ कम न होते थे. ये लोग प्रायः अपनी आंखों से शराब मटके में से निकलते हुए देखना चाहते. उन्हें इस बात की भी कुरेद लगी रहती कि देगची के अंदर कहीं पानी तो नहीं है. फिर अपनी आंखों से केतली गर्म पानी में रखते हुए देखते, तब कहीं जाकर आश्वास्त होते. इस कठोर देखरेख तले मिलावट करना बहुत मुश्किल था. अतः कुछ दिन बीतने पर मालिक ने मुझे इस काम के लिए भी अयोग्य घोषित कर दिया. सौभाग्यवश मेरी सिफारिश करनेवाले का रुतबा बड़ा था. सो, मुझे निकाल पाना उसके लिए सहज नहीं था. तब से मैं काउंटर के पीछे खड़ा हुआ अपने काम में जुटा रहता. यद्यपि मैं अपने काम के प्रति लापरवाह नहीं रहता था, तथापि सदा एकरसता और बेकारी का एहसास रहता. हमारे मालिक के चेहरे से कठोर कर्कशता टपकती थी. ग्राहक भी बस रूखे-फीके से होते, अतः ऐसे में प्रसन्न नहीं रहा जा सकता था. एक बस खोंग ई ची था, जिसके आने से थोड़ी-बहुत हंसी का अवसर मिल जाता. इसीलिए तो आज तक मुझे वह याद भी है.

खोंग ई ची एकमात्र व्यक्ति था, जो लंबा चोगा पहने होने के बावजूद जरा भिन्न था. उसका शरीर ऊंचा था. रंग पीला और चेहरे की झुर्रियों के बीच प्रायः जख्म के निशानों की वृद्धि नजर आती. खिचड़ी बालों की छिदरी, उलझी-उलझी-सी दाढ़ी यद्यपि. लंबा चोगा पहनता था, तथापि बेहद मैला-कुचैला और फटा-पुराना. यों लगता, जैसे दस वर्ष से अधिक अवधि से उसकी धुलाई या मरम्मत नहीं हुई. उसकी बातचीत रूढ़िवादी मुहावरों से भरी होती, जो किसी को आधी समझ आती, आधी नहीं. उसका खानदानी नाम क्योंकि 'खोंग' था, अतः बच्चों ने अभ्यास की कापी से पहले तीन शब्द लेकर उसे 'खोंग ई ची' नाम दे रखा था. खोंग ई ची ज्यों ही दुकान में पहुंचा, सारे के सारे शराबी उसे देखकर हंसने लगते थे. कुछ उससे यों संबोधित होते, "खोंग ई ची, यह तुम्हारे चेहरे पर जख्मों के कुछ नये निशान नजर पड़ते हैं!"

लेकिन वह कोई जवाब दिये बिना शराब लाने को कहता, "दो प्याले

कुछ लोग होते हैं, जिनका पूरा का पूरा जीवन जहालत और बदहाली और कर्ज लेते-देते ही बीत जाता है, लेकिन ताउम्र उन्हें इस बात का इल्म ही नहीं होता कि हालात बदल भी सकते हैं! उन्हें यह इल्म कौन दे सकता है—साहित्य, संस्कृति, कला या राजनीति? उन्हें यह इल्म देना साहित्य का काम है या नहीं?

शराब! एक प्लेट मटरों की!"

खोंग ली गयी चीजों के पैसे चुका दिया करता था, लेकिन फिर भी कुछ लोग जानबूझकर उसे ऊंची आवाज में पुनः पुकारते, "तुमने निश्चय ही दोबारा चोरी की है."

खोंग ई.ची. कहनेवाले को आंखें दिखाते हुए पूछता, "तुम लोग अकारण किसी की शराफत पर धब्बा क्यों लगाते हो?"

"अरे कैसी शराफत? अभी परसों मैंने अपनी आंखों से किसी की चीज चुराने पर तुम्हें उल्टा लटके मार खाते हुए देखा था!"

इस पर खोंग ई ची का चेहरा लाल भभूका हो जाता. माथे की रगें फूलकर फड़कने लगतीं, "पुस्तक लेना चोरी नहीं कहलाता. पुस्तक लेना दूसरा मामला है. उसे चोरी नहीं कहा जा सकता!" वह प्रतिरोध करते हुए साथ-साथ कुछ न समझ में आनेवाले शब्द भी कहता, जैसे "एक महान आदमी कंगाली में भी अपनाखरापन सलामत रखता है!" और फिर गड्डमड्ड से प्राचीन मुहावरे. यहां तक कि हर व्यक्ति कहकहे लगाने लगता. और मदिरालय का वातावरण हंसी-मजाक से भर जाता.

लोगों की आपस की बातचीत से मैंने इतना सुन रखा था कि खोंग ई ची ने प्राचीन विद्या और साहित्य पढ़ रखा था, लेकिन सरकारी परीक्षा वह कभी पास न कर सका, और न ही उसे जीविका के लिए कोई अन्य व्यवसाय आता था. अतः दिन-ब-दिन गरीब होता गया, यहां तक कि नौबत भीख मांगने तक आ पहुंची. सौभाग्यवश वह सुलेख लिखने वाला था. दूसरों के लिए लिखकर वह जीविका तो कमा ही सकता था, लेकिन दुर्भाग्यवश वह कामचोर और पीने-पिलाने का रसिया था. अभी कुछ दिन बीतने भी न पाते कि पुस्तकों, कागजों, ब्रश और स्याही समेत गायब हो जाता. दो-चार बार ऐसा हुआ कि उसे काम देनेवाला भी कोई न रहा. अब खोंग ई ची के सामने चोरी-चकारी के सिवा अन्य कोई रास्ता नहीं था. लेकिन हमारी दुकान में उसका रवैया निस्संदेह आदर्श था. पैसों के भुगतान में वह कभी देर न करता. हां, यदि कभी तत्काल भुगतान के लिए पैसे न होते तो उसका नाम भी उधार लेने-वालों की सूची में लिख दिया जाता, लेकिन हर बार महीना खत्म होने से पहले-पहले वह वायदे के अनुसार उधार चुका देता और यों उसका नाम भी सूची से काट दिया जाता.

आधा प्याला खत्म कर के जब खोंग ई ची के सुर्ख भभूका चेहरे की सामान्य रंगत लौट आती तो आस-पास के लोग छेड़-छाड़ का सिलसिला दोबारा शुरू कर देते, "खोंग ई ची, क्या तुम सचमुच लिख-पढ़ लेते हो?"

खोंग ई ची पूछनेवाले पर बेपरवाही की नजर डालता, जैसे भला यह भी कोई पूछनेवाली बात है, लेकिन अन्य लोग बातों का सिलसिला जारी रखते, "लेकिन...फिर तुम...आधे अफसर तक तो बन न पाये!"

खोंग ई ची इस बात पर बरबस उदास हो जाता. चेहरे पर एक अंधेरी-सी छाया लहरा जाती. होंठों के क्षीण कंपन में कुछ शब्द टूटकर रह जाते. अब के वह जो कुछ बोलता, सारे का सारा प्राचीन मुहावरों पर आधारित होता, जो किसी के रत्ती भर पल्ले न पड़ता. उस समय आस-पास के लोग दिल खोलकर कहकहे लगाते और अंदर-बाहर का सारा वातावरण हंसी से भर जाता.

ऐसे अवसरों पर मैं भी मालिक की डांट के भय से मुक्त होकर दिल खोलकर दूसरों की हंसी में शामिल हो जाता, बल्कि प्रायः तो मालिक स्वयं भी हंसी-मजाक की खातिर खोंग ई ची के साथ इसी प्रकार की दिल्लगी किया करता. खोंग ई ची अपने तौर पर समझता था कि इन लोगों के साथ मगज खपाना व्यर्थ है. अतः वह गपशप का प्रयत्न करता.

एक बार उसने मुझसे पूछा, "तुम स्कूल में पढ़ चुके हो?"

मैंने धीरे से हां में सिर हिला दिया. वह फिर बोला, "पढ़ चुके हो तो मैं जरा तुम्हारी परीक्षा लेता हूं. जरा यह तो बताओ कि शब्द 'खुई श्यांग' कैसे लिखते हैं?"

मैंने मन में सोचा, भला यह भिखमंगा कौन होता है मेरी परीक्षा लेने वाला. अतः उसकी परवाह किये बिना दूसरी ओर मुंह फेर लिया. खोंग ई ची ने बड़ी देर प्रतीक्षा की, आखिर बड़ी आत्मीयता के साथ बोला, "नहीं आता न? चलो, मैं तुम्हें सिखाता हूं. याद रखना! ऐसे शब्द कभी न भूलना. फिर भविष्य में जब स्वयं मालिक बनोगे तो हिसाब-किताब लिखते समय काम आयेंगे."

मैंने मन ही मन में सोचा, कहां मैं और कहां मालिक का स्थान! और फिर हमारे तो मालिक साहब ने कभी यह शब्द हिसाब-किताब में नहीं लिखा, लेकिन सवाल का जवाब देना बहुत आसान था. फिर मैं जब्त भी तो नहीं कर पा रहा था, अतः तनिक रूखेपन से बोला, "तुमसे कौन सीखता है!"

मेरा रूखापन देखकर वह ठंडी सांस भरकर रह गया, यों जैसे बहुत दुखी हो गया हो.

कई बार आस-पास के घरों के बच्चे भी कहकहों की आवाज सुनकर रौनक देखने आ पहुंचते और खोंग ई ची को चारों ओर से घेर लेते. वह उन्हें मटर खाने को देता. प्रत्येक बच्चे को एक दाना मटर का. बच्चे मटर खाकर भी अपनी जगह से न हिलते, बल्कि लालची नजरों से प्लेट को घूरते रहते. खोंग ई ची परेशान होकर हाथ से प्लेट को ढांप लेता. फिर कुछ झुककर प्लेट को बजाते हुए कहता, "ज्यादा नहीं है. स्वयं मेरे लिए भी थोड़े-से हैं." फिर सीधा होकर प्लेट को दोबारा देखता और सिर को इंकार में हिलाते हुए

जैसे अपने आप से कहता, "ज्यादा नहीं, ज्यादा नहीं...जरा-से तो हैं."
तब कहीं जाकर यह बच्चा-पार्टी कहकहे लगाती अपनी राह पकड़ती.
यों खोंग ई ची दूसरों के लिए हंसी-मजाक का सामान बन जाया करता, लेकिन जब वह न होता, तब भी दूसरों की जिंदगी अपने ढब पर चलती रहती.

एक दिन, चांद के त्यौहार से अनुमानतः तीन दिन पहले की बात है. मालिक हिसाब-किताब करते हुए बोला, "खोंग ई ची बहुत समय से इधर नहीं आया! अभी उसकी ओर उन्नीस पैसों का उधार बाकी है." तब मुझे भी एहसास हुआ कि उसे यहां आये हुए एक मुद्दत बीत गयी है. दुकान में मौजूद लोगों में से एक व्यक्ति बोला, "वह भला आ भी कैसे सकता है. उसकी तो टांगें टूट चुकी हैं."
मालिक ने चौंककर कहा, "अच्छा?"

"चोरी तो वह सदा से करता आया है, पर अब की बार धोखा खा गया और चोरी करने पहुंच गया तेंग साहब के यहां. अब भला उनके घर चोरी की जा सकती है?"
"फिर क्या हुआ?"
"होना क्या था. पहले अपराध स्वीकार कराया गया. फिर जमकर पिटाई हुई. रात गये तक पिटता रहा. मार-पीट ही में टांगें भी टूट गयीं."
"फिर उसके बाद?"
"उसके बाद क्या...बस टांगें टूट गयीं!"
"टांगें टूटने के बाद क्या हुआ?"
"बाद में क्या हुआ? कौन जाने. क्या खबर, मर-खप गया हो!"
मालिक ने भी दोबारा कोई सवाल नहीं पूछा. रोज की तरह आराम से दोबारा हिसाब-किताब में लग गया.

चांद का त्यौहार भी बीत चुका था और अब हेमंत की हवाओं में दिन-प्रतिदिन ठंडक बढ़ती जा रही थी. बस समझो कि शरद ऋतु का आगमन था. मैं दिन भर आग के सामने बैठा रहता. रुई भरा कोट भी पहनना शुरू कर दिया था. एक दिन, तीसरे पहर का समय होगा. दूकान में एक भी ग्राहक मौजूद नहीं था. मैं आंखें मूंदे सुस्त-सा बैठा था. अचानक एक आवाज कानों से टकरायी आवाज यद्यपि बहुत धीमी थी, तथापि बेहद जानी-पहचानी-सी. लेकिन जब देखा तो आस-पास कोई नजर न आया. उठकर बाहर की ओर झांका तो वहां खोंग ई ची था. काउंटर के नीचे चौखट के सामने बैठा था. चेहरा काला और पहले से कहीं अधिक कमजोर हो चुका था. बस समझो कि सारा हुलिया ही बिगड़ा हुआ था. बेहद फटी-पुरानी जर्जर-सी जैकेट पहने हुए आलथी-पालथी मारे एक गद्दी पर बैठा था, जिसे रस्सियों से कंधे के साथ बांध रखा था. मुझे देखकर उसने दोबारा कहा, "गर्म शराब का एक प्याला!"

अब की बार मालिक गर्दन बाहर निकालकर खोंग ई ची से संबोधित हुआ, "खोंग ई ची! अभी तो तुम्हारे जिम्मे उन्नीस सिक्कों का उधार बाकी है."

खोंग ई ची बेहद-बेहद मुरझाये हुए अंदाज में सिर उठाकर बोला, "यह हिसाब....अगली बार चुका दूंगा. अब की बार नकद भुगतान होगा."
मालिक ने सदा की तरह मुस्कराते हुए दिल्लगी की, "खोंग ई ची. तुमने फिर चोरी की!" लेकिन खोंग ई ची ने इस बार बहस करना उचित नहीं समझा. केवल इतना कहा, "मजाक न उड़ाइए श्रीमान!"
"मजाक! अरे मजाक कैसा? चोरी नहीं की तो ये टांगें कैसे टूट गयीं?"
खोंग ई ची ने सिर झुकाये हुए धीरे से जवाब दिया, "गिरने से. गिरने से टूट गयीं...गिरने से!"

उसकी आंखों में दया की प्रार्थना छिपी हुई थी, जैसे मालिक से याचना कर रहा हो. यह जिक्र न छेड़ा जाये. उस समय तक और भी लोग इकट्ठे हो चुके थे. सबने मालिक के साथ मिलकर कहकहे लगाने शुरू कर दिये. मैंने प्याला लेकर चौखट पर रख दिया. उसने फटी हुई जेब में से चार बड़े सिक्के निकालकर मेरे हाथ पर रख दिये. उसका हाथ कीचड़ से लथपथ था. वास्तव में वह उस हाथ से घिसटता हुआ यहां तक पहुंचा था. थोड़ी देर बाद उसने फिर भरा हुआ प्याला खत्म किया और आस-पास के लोगों के मजाक भरे कहकहों के शोर में धीरे-धीरे घिसटता हुआ वापस चला गया. उसके बाद फिर एक लंबे समय तक खोंग ई ची नजर न आया. वर्ष के अंत में मालिक ने हिसाब-किताब की कापी उठाकर देखते हुए कहा, "खोंग ई ची पर अभी तक 19 सिक्कों का उधार बाकी है!

अगले वर्ष शुरू मई के त्यौहार पर मालिक ने फिर यही वाक्य दुहराया, "खोंग ई ची ने अभी तक 19 सिक्कों का उधार नहीं चुकाया!" लेकिन चांद के त्यौहार पर हिसाब-किताब के समय मालिक भी चुप रहा. वर्ष के अंत पर खोंग ई ची का कोई अता-पता नहीं था.... मैंने उसके बाद से अब तक दोबारा खोंग ई ची को नहीं देखा. यह भी संभव है कि वह सचमुच मर-खप गया हो! □

रूपांतर : सुरजीत

लू शुन के संस्मरण

धाय मां

कहा जाता है कि बच्चे को जो कुछ भी बनना होता है, किसी न किसी तरह उसके बीज उसके बचपन में ही पड़ जाते हैं. हो सकता है यह निरा संयोग हो पर मां अशांग ने लू शुन को कहानियों की जो किताब खरीदकर दी, उसने ही उनके अंतस में कथालेखन का बीज बो दिया...लू-शुन के बचपन का मुंह बोलता रेखाचित्र–

मां शांग, वह नौकरानी थीं, जिन्होंने मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था या कहा जाना चाहिए कि वे मेरी आया थीं. मेरी मां और दूसरे अन्य कई लोग उन्हें यही कहकर पुकारते थे, यह सुनने में भी विनम्र लगता था. सिर्फ मेरी दादी उन्हें 'अ शांग' कहकर पुकारती थीं. मैं उन्हें प्रायः 'अ' कहकर ही बुलाता, साथ में 'शांग' नहीं जोड़ता, लेकिन जब मुझे यह पता लगा कि मेरी चुहियों को मारनेवालों में एक वे भी हैं तो मैं उनसे नाराज हो गया और मैं भी उन्हें 'अ:शांग' कहकर पुकारने लगा.

हमारे यहां किसी का 'शांग' उपनाम नहीं था, जबकि वे सांवली, गोल-मटोल तथा ठिगनी थीं, 'शांग' (कद्दावर) वैसे उन पर फबता नहीं था. यह उनका नाम था भी नहीं. मुझे याद है कि उन्होंने मुझे अपना नाम बताया था. विशेषण क्या था, यह तो मुझे याद नहीं, लेकिन 'शांग' तो नहीं ही था. उनके उपनाम का तो मुझे पता ही नहीं चला. एक बार उन्होंने मुझे बताया था कि उनका यह नाम पड़ा कैसे. बहुत साल पहले हमारे परिवार में एक बहुत लंबे कद की नौकरानी थी, जो कि असली 'अ:शांग' थी, जब वह छोड़कर गयी, तब इसने उसका स्थान लिया. तब क्योंकि हर एक को शांग को ही पुकारने की आदत थी, और इस आदत को वे बदलना भी नहीं चाहते थे, इसलिए तब ये ही 'शांग' बन गयीं.

हालांकि किसी की पीठ पीछे उसकी बातें करना गलत बात है, फिर भी यदि आप मुझसे साफ सुनना चाहते हैं तो मुझे यह स्वीकार कर लेना होगा कि मैंने उनके विषय में पर्याप्त नहीं सोचा है. उनकी जिस आदत को मैं सख्त नापसंद करता था, वह थी गप्पें हांकनेवाली बात. वह कानाफूसी करतीं, उंगलियों को चला-चलाकर रहस्य उत्पन्न करतीं, अपनी या सुननेवाले की नाक पर उंगली टिका देतीं. घर में जब भी कोई हल्का-फुल्का बखेड़ा खड़ा होता, मैं अपने आपको इस संदेह से नहीं बचा पाता कि हो, न हो इसके पीछे कहीं इसका ही हाथ हो. वह मेरी कारगुजारियों पर भी रोक लगाती थीं. यदि मैं कोई बेल उखाड़ देता या किसी पत्थर को इधर से उधर कर देता तो वह कहतीं कि मैं शैतान हूं. धमकी देतीं कि मां से शिकायत करेंगी. इतना ही नहीं, गर्मी के मौसम में वे बिस्तर पर हाथ-पांव पसारकर, मानो कोई विकराल पात्र हों, मुझे ऐसे चिपटाकर सोतीं कि मुझे करवट लेने के लिए भी जगह न बचती. ज्यादा देर लेटे रहने से मेरे हिस्सेवाली चटाई गर्म हो उठती. मैं न तो चिल्लाकर उन्हें जगा पाता, और न ही उन्हें धकेल पाता.

जब मैंने बहुत बार शिकायत की, तब मेरी मां ने उनसे पूछा और मैं जानता था कि मां ने इशारे से उनसे यही कहा था कि सोने में वे मुझे अधिक जगह दे दिया करें. अ:शांग कुछ नहीं बोलीं, मगर उस रात जब गरमी की वजह से मैं जागा, मैंने पाया कि बिस्तर पर एक विकराल पात्र अपने लंबे हाथ मेरी गरदन पर फैलाये अभी भी सो रहा है. मुझे लगा कि इस स्थिति से बचने का कोई रास्ता नहीं है.

वे कई तरह से बेहद रूढ़िगत थीं. जो भी हो, उनके अधिकतर रिवाजों ने मुझे धैर्य गंवाना सिखाया. साल का सबसे ज्यादा खुशी भरा दिन 'न्यू ईयर्स ईव' ही होता है. पुराने साल को जाता देखने के बाद, मैंने लाल कागज में लिपटे अपने

● ५६ वर्षीय लू शुन अपनी पत्नी शू ग्वांगपिंग और बेटे के साथ.

पैसों को तकिये के बराबर में रखा, जिन्हें मेरे बड़ों ने मुझे दिया था. अगले दिन मैं जैसे चाहता, वैसे उन्हें खर्च कर सकता था. लेटा हुआ मैं टकटकी बांधे उस लाल पैकेट को निहार रहा था और सोच रहा था कि छोटा बाजा, हथियार, चीनी मिट्टी की एक मूर्ति या बुद्ध...को मैं कल खरीद लूंगा तभी वे भीतर आयीं और एक 'गुड-लक औरेंज' बिस्तर के सिरहाने रख दिया.

"बेटे, इस बात को ठीक से याद रखना." उन्होंने मुझसे बड़े चाव से कहा, "कल पहले महीने का पहला दिन है. सुबह जब तुम्हारी आंखें खुलें तो पहली बात तुम्हें कहनी है, 'गुड लक, अम्मा!' ठीक है? तुम्हें याद रखना है, क्योंकि इसी से सारे साल का भाग्य तय होता है. याद रखना, इसके अलावा और कुछ नहीं बोलना है. और जब तुम यह कह चुको, तब 'गुड-लक औरेंज' का एक पीस तुम्हें खाना है," उन्होंने औरेंज उठाया और उसे मेरे सामने करके दिखाया, 'और तब, इसी रास्ते साल-भर भाग्य साथ देगा..."

मैंने सपनों तक में भी याद रखा कि यह नववर्ष है. सुबह को मैं खासतौर पर जल्दी जाग गया. जैसे ही मैंने आंखें खोलीं, मैं उठकर बैठना चाहता था, लेकिन एकाएक अपनी एक बांह अड़ाकर उन्होंने मुझे ऐसा करने से रोक दिया. मैंने अचंभे से उन्हें देखा, और पाया कि वे जिज्ञासु नजरों से मुझे घूर रही हैं.

साग्रह उन्होंने मेरे कंधे झकझोरे. अचानक मुझे याद आ गया.
"गुड लक, अम्मा."
"गुड लक, हम सबके लिए गुड लक सयाने लड़के' गुड लक." असीम सुख से वे हंसी और मेरे मुंह में कोई ठंडी चीज उन्होंने ठूंस दी. जब मैं इस 'हादसे' से निकला, मैंने महसूस किया कि जरूर यह वही 'गुडलक औरेंज' रहा होगा. अब 'न्यू ईयर्स डे' पर घोषित वह कठिन परीक्षा ठीक ठाक निपट गयी थी और मैं उठकर खेलने जा सकता था.

उन्होंने मुझे अन्य दीक्षाएं भी इसी तरह दी थीं, मसलन, यदि कोई मर जाता है, उसके लिए यह नहीं कहना चाहिए कि वह मर गया, कहना चाहिए कि 'वह चला गया'. उस कमरे में घुसना भी नहीं चाहिए, जहां कोई मर गया है या किसी बच्चे का जन्म हुआ है. यदि चावल का दाना धरती पर गिर पड़ा है, उसे उठाना चाहिए और सबसे बढ़िया यह है कि उसे खा लिया जाये. किसी भी हालत में तुम्हें उस तार के नीचे नहीं घूमना चाहिए, जिस पर पैंट, पाजामे सूख रहे हों...और भी बहुत-सी बातें थीं, जिनमें से अधिकांश मैं भूल चुका हूं. मुझे जो एकदम साफ याद है, वह है इस झक्की नववर्ष-अनुष्ठान की. संक्षेप में, ये सब ऐसी छोटी-बड़ी बातें हैं, जो कि आज भी मेरे धैर्य को हिला देने में सक्षम हो सकती हैं.

लू शुन की जन्मस्थली

एक मौके के वास्ते हालांकि मैं उनके लिए अपूर्व सम्मान महसूस करता हूं, वे अक्सर मुझे लोंग हेयर्स की कहानियां सुनाया करती थीं, जिस लोंग हेयर्स का वह जिकर करती थीं, मात्र हुंग शुन-शियान की सेना ही नहीं होती, बल्कि ऐसा लगता कि बाद के डाकू और बागी भी इसमें शामिल हैं. केवल नहीं होते तो आधुनिक क्रांतिकारी, जो कि उन दिनों अस्तित्व में ही नहीं थे. लोंग हेयर्स को वे सबसे डरावने प्राणी की तरह पेश करतीं, जो कि इस तरह बातें करता, जिसे कोई नहीं समझ सकता. उनके अनुसार, जब लोंग हेयर्स हमारे शहर में घुसा, हमारा पूरा परिवार यहां से कूच कर गया, सिर्फ एक दरबान और एक खाना बनानेवाली बुढ़िया के, जो यहां जायदाद की देखभाल के लिए छोड़ दी गयी थीं. तब लोंग हेयर्स हमारे घर आया था. बुढ़िया ने, जो उसे 'ग्रेट किंग' कहा करती थी, ऐसा लगता है कि यह लोंग हेयर्स को पुकारने का तरीका था, उससे शिकायत की थी कि वह भूखों मर रही है.

"तब तो तुम्हें", लोंग हेयर ने खीसें निपोरते हुए कहा, "खाने के लिए यह मिल सकता है." उसने ऊपर नजरें दौड़ाई और पाया कि वहां दरबान का सिर था. बुढ़िया का फिर कुछ कहने का साहस कभी नहीं हुआ. बाद में जब लोग ये बातें करते, वह धरती पर लोट-पोट हो जाती और छाती पीट-पीटकर कहती, "हा-हा-हा." वह बिसूरती, "उसने मुझे ऐसा मारा...ऐसा मारा...ऐसा मारा..."

मैं भयभीत नहीं होता, मुझे लगता कि ऐसा मेरे साथ तो होगा नहीं. चूंकि मैं तो दरबान नहीं ही हूं, लेकिन अ:शांग ने मेरे इस सोच का अनुमान लगा लिया था, इसीलिए बोलीं, "लोंग हेयर्स तुम्हारे जैसे छोटे बच्चों को उठाकर ले जाता है, ताकि उनमें से छोटे छोटे लांग हेयर्स बना सकें. वह सुंदर लड़कियों को भी उठाकर ले जाता है."

"ठीक है, आपका तो फिर भी कुछ नहीं बिगड़ेगा."

यह पक्की बात है कि वे ऐसी परिस्थितियों में भी सुरक्षित ही रहतीं, क्योंकि वे न तो दरबान थीं, न छोटा लड़का और न ही सुंदर लड़की. असल में, उनकी गर्दन पर कुछ दाग थे, जिन्हें कि फोड़ों ने और भी सख्त बना दिया था.

"तुम ऐसा कैसे कह सकते हो?" वह जानना चाहती थी, "तब क्या हम उनके किसी काम के नहीं थे? वे हमें भी ले जा सकते थे. जब सरकारी फौजें शहर पर आक्रमण करने के लिए आयीं, तब लोंग हेयर्स ने हमारे घाघरे उतरवाकर, एक लाइन में शहर की दीवार पर सबको खड़ा कर दिया था. तब फौजी तोपें गोलाबारी नहीं कर सकीं. यदि वे गोलाबारी करतीं, तो खुद तोपें ही फट जातीं."

यह सब कुछ वाकई मेरे ऊबड़-खाबड़ सपनों से भी दूर की बातें थीं. मैं इनसे चकित नहीं हो सकता था. मैंने उस पर कुछ नहीं सोचा, वे हाथ-पांव पसारकर पूरे बिस्तर पर अपना कब्जा जमा लेतीं, इसी से उन्हें जाना जा सकता है, मुझे किंचित जगह उनके लिए बनानी ही पड़ती.

हालांकि उनके लिए सम्मान का भाव शनैः शनैः कम होता गया, लेकिन मैं सोचता हूं कि पूरी तरह से यह गायब नहीं हुआ, क्योंकि मुझे पता लग चुका था कि मेरी चुहियों को मारनेवाली वही थीं. इस संबंध में उनसे सवाल-जवाब किये थे और उन्हीं के मुंह पर 'अ:शांग' कहकर मैंने उन्हें पुकारा था. मैं कोई छोटा 'लोंग हेयर' नहीं था, न ही किसी शहर पर हमला करनेवाला फौजी या तोप की गोलाबारी से भी मुझे क्या डरना था—तो मुझे क्या जरूरत पड़ी थी कि उनसे भयभीत रहूं?

अपनी चुहियों के स्यापे के दौरान उनसे बदला लेते हुए, मैं 'बुक ऑफ हिल्स एंड सीज' की एक सचित्र प्रति के लिए भी तरस रहा था, उसकी ललक हमारे दूर के एक ताऊ ने जगाई थी मोटे, थुलथुल मगर शरीफ आदमी.

जब तक मैं खलता रहता, कुछ गड़बड़ा नहीं होती, मगर जिस भी क्षण मैं बैठता, उस सचित्र किताब 'बुक आफ हिल्स एंड सीज' की याद आ जाती.

चूंकि मैं इस किताब के विषय में अलापता ही रहता था, इसलिए शायद अ:शांग ने भी पूछना शुरू कर दिया कि यह 'बुक ऑफ हिल्स एंड सीज' क्या है? मैंने यह उन्हें नहीं बताया, क्योंकि मैं जानता था कि वह कोई विद्वान तो हैं नहीं, इसलिए बताने से फायदा भी क्या, लेकिन उन्होंने पूछना जारी रखा तो एक दिन मैंने उन्हें बता ही दिया.

जैसा कि मुझे याद पड़ता है, पखवाड़े या महीने भर के बाद वे छुट्टियों पर घर चली गयीं. नीले कपड़ेवाली नयी जैकेट पहने वे लौटीं. जैसे ही मुझे देखा, उन्होंने एक पैकेट मुझे थमाया

"सुनो बेटे," वे प्रसन्नता से बोलीं, "मैंने वह सचित्र पुस्तक 'बुक आफ हिल्स एंड सीज' खरीद ली है." सुनकर मैं एकदम स्तब्ध रह गया. बेहद उतावली से मैंने पैकेट खोला. चार छोटी जिल्दों में पुस्तक थी और एकदम तय है कि जब मैंने पृष्ठ उलटे-पलटे तो आदमी के मुंह वाले पक्षी, नौ फनों वाला सांप...सब वहां मौजूद थे.

उनके प्रति इज्जत बढ़ाने की प्रेरणा यही घटना बनी. जो काम दूसरों ने नहीं किया या कर नहीं सके, उसे पूरा करने में वे सफल रहीं. वास्तव में उनके पास अद्भुत आत्मिक शक्ति रही होगी. चुहिया मारने के लिए जो मेरी नाराजगी थी, वह इसके साथ ही काफूर हो गयी.

चार जिल्दोंवाली वह पहली पुस्तक थी, जो मेरी पहली अपनी किताब कहलाई तथा साथ ही यह बहुमूल्य किताबें तो थीं ही.

मैं आज भी इन्हें देख सकता हूं, लेकिन अब मुझे ऐसा लगता है कि इसकी छपाई और नक्काशी दोनों अनगढ़ हैं. पीला कागज और चित्रकारी भी खराब. सीधी लाइनों को जोड़कर काम चलाया गया था, यहां तक कि जानवरों की आंखें तक आयताकार थीं. फिर भी, यह मेरी अमूल्य पुस्तक थी. इसमें आप वाकई ढूंढ सकते हैं—आदमी के मुंहवाले पक्षी, नौ फनोंवाला सांप, एक टांगवाला बैल, बोरे जैसा राक्षस, जिसके सिर नहीं है और जो अपने चूचुकों को आंखों की जगह और अपनी नाभि को मुंह की जगह इस्तेमाल करता है तथा भाले और ढाल के साथ नाचता है."

इसके बाद मैंने गंभीरता से सचित्र पुस्तकें इकट्ठी करनी शुरू कर दीं 'फोनेटिक एंड इलस्ट्रेशंस फार अर्बया तथा 'इलस्ट्रेशंस टु द बुक आफ हिल्स एंड सीज' का दूसरा लिथोग्राफ संस्करण भी खरीदा, जिसमें प्रत्येक अध्याय का पद्य में निष्कर्ष दिया गया था. तस्वीरें हरी थीं. तथा पात्र लाल—पहले के मुकाबले अधिक खूबसूरत—और यह किताब दो वर्ष पहले तक मेरे पास थी. हओई-शिंग की टिप्पणी के साथ यह लघु संस्करण था, लेकिन उस पहले संस्करण के बारे में मुझे नहीं मालूम कि वह कब गुम हो गया.

मेरी नर्स मां शांग या अ:शांग ने इस जीवन को तीस बरस पहले जरूर छोड़ दिया होगा. मैं उनका इतिहास और नाम कभी नहीं जान सका. मैं केवल यह जानता हूं कि उन्होंने एक लड़के को गोद लिया था.शायद इसलिए कि वह बहुत छोटी उम्र में विधवा हो गयी थीं.

पृथ्वीमाता की अंधेरी कोख! क्या तुम्हारे वक्ष में वह महान आत्मा शांति के साथ निवास कर रही है? □

अनुवाद : राजकुमार गौतम

● लू शुन की कहानियां : चार

योद्धा

'वह असारता की पंक्तियों के बीच टहलता है, जहां जो कुछ भी उससे मिलता है उसे एक खास तरीके से हिलाकर इशारा करता है. वह जानता है कि यह इशारा एक हथियार है जिसे उसका शत्रु बिना रक्तपात के उसे मार डालने के लिए इस्तेमाल कर रहा है...' कैसा है यह विचित्र योद्धा?

वह एक विचित्र योद्धा है. वह न अच्छी तरह पालिश किये माउजर-धारी अफ्रीकी आदिवासियों की तरह अनजान है और न स्वचालित पिस्तौल-धारी 'हरा झंडा' चीनी सैनिकों की तरह निर्जीव ही. न वह बैल की खाल या रद्दी लोहे के बख्तर पर ही निर्भर करता है. उसके पास अपनी अस्मिता के अलावा कुछ नहीं है और हथियार के बतौर उसके पास बर्बर लोगों द्वारा प्रयोग में लाये जानेवाले भाले के अलावा और कुछ भी नहीं है.

वह असारता की पंक्तियों के बीच टहलता है, जहां जो कुछ भी उससे मिलता है उसे एक खास तरीके से सिर हिलाकर इशारा करता है. वह जानता है कि यह इशारा एक हथियार है जिसे उसका शत्रु बिना रक्तपात के उसे मार डालने के लिए इस्तेमाल कर रहा है और इससे मारे जाकर बहुतेरे योद्धा अपनी जान से हाथ धो बैठे हैं. तोप के गोले की तरह यह इशारा वीर योद्धा को प्रभावहीन कर जाता है.

उनके सिरों के ऊपर तरह-तरह के झंडे और पताकाएं, हर तरह की उपाधियों से विभूषित लहरा रहे हैं—उन पर कसीदा कर के देशभक्त, विद्वान, लेखक, नगरपिता, युवा, कलाप्रेमी, भद्रजन आदि काढ़ा गया है. उनके नीचे सभी तरह के लबादे हैं जिन पर हर तरह के अच्छे नामों की कसीदाकारी की गयी है. जैसे विद्वता, नैतिकता, राष्ट्रीय संस्कृति, जनमत, तर्क, न्याय, पूर्वी सभ्यता वगैरह-वगैरह.

मगर वह अपना भाला उठाता है.

वे सभी एक साथ कसमें खाते हैं कि उनके हृदय उनके सीने के बीचों-बीच हैं, दूसरे पूर्वाग्रही लोगों की तरह गलत जगह पर नहीं हैं. अपने सीनों पर लगायी गयी तख्तियों से भी वे प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं कि उनके हृदय उनके सीने के बीचोंबीच यानी सही जगह पर हैं. पर वह अपना भाला उठाता है.

वह मुस्कराता है और अपना भाला एक किनारे की तरफ फेंकता है और भाला उनके हृदयों को भेदता चला जाता है.

वे सभी लड़खड़ाकर नीचे गिर जाते हैं, रह जाते हैं, उनके लबादे जिनमें कुछ भी नहीं होता. असारता उनकी पकड़ से निकल भागती और युद्ध जीत लेती है, क्योंकि अब वह अपराधी हो गया है जिसने देशभक्त तथा दूसरों को मार गिराया है.

पर वह अपना भाला उठाता है.

वह फिर असारता की कतारों के बीच से लंबे डग भरता गुजरता है और फिर उसे वही इशारे, वही झंडे और वही लबादे दीख पड़ते हैं...

पर वह अपना भाला उठाता है.

आखिरकार वह बूढ़ा हो जाता है और असारता की कतारों के बीच बूढ़ा होकर स्वर्ग सिधार जाता है. अंततः वह योद्धा नहीं था, लड़ाइयां उसने नहीं लड़ीं, और विजेता तो असारता थी.

ऐसी जगह पर युद्ध की ललकार नहीं सुनायी पड़ती, बल्कि चारों ओर शांति विराजती है.

शांति...

वह अपना भाला उठाता है. □

अनुवाद : डा. माहेश्वर

धारावाहिक उपन्यासः सात

बंधन

• नरेंद्र कोहली

अब तक आप पढ़ चुके हैं

शिकार खेलने गये सम्राट शांतनु, निषाद राज की पुत्री सत्यवती को देखकर उसके सौंदर्य से इतने अभिभूत हो गये कि उन्होंने स्वयं को महल में कैद कर लिया, क्योंकि सत्यवती से विवाह करने के लिए निषादराज की शर्त थी कि उस स्थिति में सत्यवती का पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा. राजा यह वचन नहीं दे पाये. राजा की पूर्व पत्नी गंगा जो हर प्रसव के बाद अपनी संतान को नदी में बहा देती थी, अपने अंतिम पुत्र देवव्रत को नदी में न बहा पाने के कारण राजा को त्याग कर जा चुकी थी. अब युवावस्था में पहुंचा युवराज देवव्रत ही राज्य का उत्तराधिकारी था. परंतु देवव्रत से पिता की कामपीड़ित स्थिति देखी नहीं गयी और वह अपना सर्वस्व न्योछावर करके पिता के सुख के लिए सत्यवती को लिवा लाया. सत्यवती यद्यपि तपस्वी पाराशर से विवाह करना चाहती थी. किंतु अपने बाबा की इच्छा के आगे उसकी एक नहीं चली और वह अतीत की स्मृतियों में डूबी, राजमाता बनने के लिए रथ पर सवार होकर चल दी. रास्ते में उसे याद आया कि किस प्रकार पाराशर से उसका मिलन हुआ, फिर वह एक बेटे की मां बनी और उसे पाराशर के सुपुर्द करके अपने बाबा के साथ लौट आयी...सोचते-सोचते अंततः उसने निर्णय लिया कि जब बाबा ने उसे राजरानी बनाना चाहा है तो अब वह राजरानी भी बनेगी और राजमाता भी.

शांतनु ने देवव्रत का नया नामकरण किया—भीष्म! सत्यवती से प्रथम-मिलन में शांतनु को काम-सुख तो मिला मगर उसकी बातचीत, उसके ज्ञान की सीमाओं ने सम्राट को चिंतित भी किया—वे सोचने पर विवश हो गये कि क्या सत्यवती राजरानी और उनकी पत्नी बनने के योग्य थी? दूसरी ओर सत्यवती निरंतर शांतनु और पाराशर की तुलना करती रही. बार-बार उसके मस्तिष्क में एक ही सवाल कौंधता रहा—बाबा ने उसे पाराशर की अपेक्षा शांतनु को क्यों सौंपा....कि उन्होंने देवव्रत (भीष्म) से सावधान रहने को क्यों कहा था?...और फिर वह इस कदर सावधान हुई कि शांतनु चकित रह गये कि उन्होंने वास्तव में क्या मांगा था और क्या पाया?....

गंगा-तट के वन में मृगया के बाद भीष्म थक कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये थे. उनके आसपास कोई भी बड़ा पशु नहीं था. कुछ पक्षियों के स्वर वृक्षों के ऊपर से आ रहे थे. पास ही एक कुक्कुट बड़ी स्फूर्ति से, धरती पर से कुछ चुग रहा था. संभवतः किसी प्रकार के खाद्य पदार्थ के कुछ दाने हों, या कोई कीट-पतंग हो. वह बड़ी तीव्रता से अपनी चोंच चार-पांच धरती पर करता और फिर गर्दन उठाकर एक बार अपने चारों ओर की धरती और वायुमंडल का सर्वेक्षण करता और पुनः चुगने लग जाता.

भीष्म बड़ी रुचि से उसे देख रहे थे. उसका दाना चुगना तो उनकी समझ में आ रहा था; किंतु जिस ढंग से वह रह-रहकर चारों ओर का सर्वेक्षण करता था, वह उनके मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएं उत्पन्न कर रहा था. क्या यह उसकी सतर्कता थी? क्या वह आशंकित था कि कोई उसका दाना छीन लेगा या कोई उसके प्राण हर लेगा?....या यह उसका अहंकार था? क्या वह चारों ओर देखकर यह जताना चाहता था कि मेरी विचरण-भूमि है. देखो मैं कितना सुखी हूं. क्या व्यक्ति का सुखी होना ही पर्याप्त नहीं है? उस सुख का प्रदर्शन भी अवश्य होना चाहिए? क्या विपन्नता से तुलना किये बिना संपन्नता का कोई महत्त्व नहीं है?

भीष्म के मन में आया कि एक बाण मारकर अभी उसका सारा अहंकार चूर कर दें. इतना छोटा-सा जीव, जिसे बाण तो क्या, कोई एक कंकड़ी भी दे मारे तो उसके प्राण निकल जायें, कोई हाथों में पकड़ उसकी गर्दन मरोड़ दे, या वह किसी भी बड़े जीव के पैर के नीचे आ जाये, तो उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाये...वही जीव इस प्रकार वक्ष फुलाये, स्फीत अहंकार लिये घूम रहा है, जैसे सारी सृष्टि का स्वामी हो...

तत्काल उनके मन में एक धिक्कार उठा : क्या यह भीष्म का अपना अहंकार नहीं है? उनसे भी तो बड़ी शक्तियां हैं. अपने स्थान पर बैठा स्रष्टा, भीष्म को देखकर भी, इसी प्रकार मुस्करा रहा होगा...बड़ा धनुष-बाण लिए घूम रहा है, जैसे सारी सृष्टि का संहार कर डालेगा. अभी आकाश से बिजली टूटे तो भीष्म यहीं बैठा-बैठा क्षार हो जायेगा. धरती में एक दरार पड़े और भीष्म यहीं बैठा-बैठा क्षार हो जायेगा. धरती में एक दरार पड़े और भीष्म उसके भीतर समा जायेगा. अभी भीष्म की हृदयगति रुक जाये, तो भीष्म बैठा-बैठा ही सो जायेगा।...तब कहां रहेगा, भीष्म का अहंकार...कि वह एक बाण से एक कुक्कुट को मृत्युशैया पर सुला सकता है?....

तभी वृक्षों के पीछे से एक और वैसा ही कुक्कुट प्रकट हुआ भीष्म को लगा, यह पहले का ही कोई संबंधी होगा. इनका परिवार भी यहीं कहीं आसपास होगा...पर उसे देखते ही पहले कुक्कुट के मुख से क्रोध भरी ध्वनियां निकलने लगीं. उसकी गर्दन तन गयी. गर्दन के पर फैल गये और वह पूर्णतः रौद्र मुद्रा में आ गया. यही स्थिति दूसरे कुक्कुट की हुई और वे दोनों विधिवत् लड़ने लगे. उनके पंजों और चोंचों का प्रहार कठोरतर और क्रूरतर होता गया और उनके कंठ उग्रतर युद्धघोष करने लगे.

कुछ ही क्षणों में दोनों के शरीर से अनेक स्थानों से पंख झड़ गये थे और रक्त की लालिमा उभर आयी थी. किंतु उनका युद्ध-वेग शिथिल नहीं हुआ; वह उग्रतर ही होता चला गया.

थोड़ी देर में उनके शरीरों से रक्त-बिंदु टपकने लगे थे और गर्दनें तथा टांगें, रक्त से भीग आयी थीं.

बिना किसी पूर्व-योजना या चिंतन के, अनायास ही भीष्म उनकी ओर बढ़ गये और उन्हें धमकाया, "भागो! व्यर्थ क्यों रक्तपात कर रहे हो?"

दोनों कुक्कुट भाग गये, पर भीष्म वहीं बैठे सोचते रहे: किसलिए लड़ रहे थे ये कुक्कुट? क्यों अपना रक्त बहा रहे थे; और क्यों एक-दूसरे के प्राण लेने पर तुले हुए थे? कौन-सी संपत्ति है, जिसके लिए इतना रक्तपात हुआ? वन में इन दोनों और वैसे ही सहस्रों कुक्कुटों के लिए प्रकृति ने भोजन उपलब्ध करा रखा है. वह तो सब को देती है, फिर ये एक-दूसरे की हत्या करने पर क्यों तुले हुए थे?... यदि कहीं वे इन कुक्कुटों की भाषा समझ सकते और उनसे यह प्रश्न पूछते, तो संभवतः उनका उत्तर होता : "अधिकार-रक्षा के लिए!"

तभी उन्हें लगा, जब मनुष्य अकेला-दुकेला लड़ता है या सेनाएं लेकर एक-दूसरे पर आक्रमण करता है, तो विधाता भी इस प्रकार हंसता होगा, "मूर्खो! तुम सब के लिए पर्याप्त है सृष्टि के पास. फिर क्यों व्यर्थ युद्ध करते हो?"

और आज फिर भीष्म के मन में अधिकार की बात उठी थी. अपने अधिकार के लिए भीष्म विरोध करते—किसका? अपने पिता का? अपने अजन्मे भाइयों का?...क्या छिन गया है भीष्म का? किस बात का अभाव है उनको? संघर्ष करके और ऐसा क्या मिल जायेगा भीष्म को, जिससे उन्हें किसी नये सुख, किसी नयी उपलब्धि की अनुभूति होगी?

...और सहसा उन्हें लगा, उनके मन में किसी के लिए कोई विरोध नहीं है. किसी से कोई शिकायत नहीं है उन्हें...न पिता से, न माता से...किसी और से भी नहीं...

उन्हें बड़ा हल्का-हल्का सा लगा, जैसे मन में कोई उल्लास समा गया हो. सत्यवती को पाकर पिता प्रसन्न हैं. अपनी भावी संतान के लिए राज्य का आश्वासन पाकर माता सत्यवती प्रसन्न हैं....भीष्म कृतकृत्य हो गये...उन्हें अपने लिए कुछ नहीं चाहिए...

उनकी इच्छा हुई, चलकर माता-पिता से मिल आयें. बहुत दिनों से वे उधर गये भी नहीं थे.

—कर्म का फल इच्छा से संचालित होता है या सृष्टि के नियमों के अधीन है?....कर्म-बंधन कितना बांधता है और कितना मुक्त करता है...सम्राट शांतनु ने वृद्धावस्था में निषाद षोडशी से विवाह की इच्छा करके और देवव्रत ने इस विवाह के लिए आजीवन विवाह न करने की भीष्म प्रतिज्ञा करके कर्म के किस बंधन को चुनौती दी और कर्म के किस फल को इच्छा से संचालित किया अथवा सृष्टि के नियमों के अधीन होकर माना?

प्रस्तुत है...राम-कथा पर आधारित उपन्यासों के बहुचर्चित कथाकार द्वारा महाभारत पर आधारित उपन्यासों की श्रृंखला में उनका प्रथम उपन्यास....इस उपन्यास की पिछली पांच किस्तें आप क्रमशः सारिका : 1 जुलाई 15 जुलाई, 1 अगस्त, 16 अगस्त, 1 सितंबर और 16 सितंबर, 1986 के अंकों में पढ़ सकते हैं....

दासियां भीष्म को सत्यवती के कक्ष में नहीं ले गयीं. उन्हें एक बड़े और सुसज्जित कक्ष में बैठा दिया गया था; और महारानी को सूचना देने की बात कहकर दासियां चली गयी थीं.

प्रासाद का यह खंड नया नहीं था, और न भीष्म ही इस कक्ष में पहली बार आये थे; किंतु यहां सब कुछ परिवर्तित हो चुका था. इतना, कि कक्ष को पहचानना भी कठिन हो रहा था. सारी साज-सज्जा बदल डाली गयी थी, और अब तक जिन वस्तुओं को इस कक्ष में देखने के वे अभ्यस्त थे, उनमें से एक भी यहां नहीं थी. यहां तक कि उन्हें सारी दासियां भी नई और अपरिचित ही लगीं.

थोड़ी देर में एक दासी लौटी, "राजकुमार! महारानी इस समय अस्वस्थ हैं. आपसे भेंट कर सकने में असमर्थ हैं."

"माता अस्वस्थ हैं?" भीष्म ने जैसे अपने-आपसे कहा, "मुझे तो कोई सूचना नहीं थी. माता यहां नहीं आ सकतीं, तो मैं ही भीतर चलता हूं. चलो, मार्ग दिखाओ."

"क्षमा करें राजकुमार!" दासी बहुत विनीत भाव से बोली, "आपको भीतर ले चलने की अनुमति नहीं है. महारानी आपसे भेंट करने की इच्छुक

नहीं है."

भीष्म ने आश्चर्य से दासी को देखा : क्या कह रही है यह मूर्खा? माता उनसे भेंट करने की इच्छुक नहीं हैं.... वे अस्वस्थ हैं. मिल सकने की स्थिति में नहीं हैं. उनका मन अशांत है. वे एकांत चाहती हैं...कोई भी कारण हो सकता है...पर वह कह रही है कि वे मिलने की इच्छुक नहीं हैं...इन नयी दासियों के साथ यह बड़ी समस्या है. इन्हें भाषा के सम्यक उपयोग का ज्ञान नहीं है. कुछ भी कह देंगी. उनके शब्दों से क्या ध्वनित हो रहा है, इसका उन्हें तनिक भी आभास नहीं है....अब इस समय भीष्म माता के स्वास्थ्य की चिंता करें या इस दासी को व्याकरण और साहित्य पढ़ायें....

"राजवैद्य आये थे क्या?"

"आयं! प्रातः आये थे."

"मैं कोई सहायता कर सकता हूं?"

"महारानी ने ऐसा कोई आदेश नहीं दिया है."

"अच्छा! उनका ध्यान रखना. मैं फिर किसी समय आ जाऊंगा."

भीष्म लौट आये.

उनका मन अधिक समय तक दासी की भाषा, उसके शिष्टाचार और उसकी विनय पर नहीं अटका. संभवतः माता का मन ठीक नहीं था. 'वे कुरुकुल के युवराज को जन्म देनेवाली हैं. उनके स्वास्थ्य की देख-भाल होनी ही चाहिए....' ....युवराज!' उनका मन कहीं अपने ऊपर ही हंसा, 'अभी कल तक तो तुम युवराज थे.' विधि का विधान भी कितना नाटकीय है. किसी को किसी भी प्रकार का पूर्वाभास नहीं होता कि कौन-सी घटना, इच्छा या प्रवृत्ति, आगामी किस बड़ी घटना का कारण बन जायेगी। ...सत्यवती का पहला पुत्र हस्तिनापुर का युवराज हो और फिर यहां का सम्राट् हो—इसलिए विधाता ने माता गंगा के हाथों, भीष्म के सात बड़े भाइयों को जीवन-मुक्त करा दिया...और भीष्म के मन को आसक्ति से शून्य कर दिया. जब विधि ने यही रच रखा था, तो गंगा के आठों पुत्र कैसे जीवित रह सकते थे....

संध्या समय शांतनु प्रासाद में लौटे. सबसे पहले वे सत्यवती के पास गये.

"कैसी हो सत्या?"

"ठीक हूं! आपका दिन कैसे बीता?"

"सभा में बहुत काम था. थक गया हूं." शांतनु ने किरीट उतारकर दासी के हाथों में पकड़ा दिया, "भीष्म बहुत सारा काम संभाल लिया करता था, पर इधर वह एक प्रकार से वैरागी हो गया—दिन भर अध्ययन, चिंतन और मनन में डूबा रहता है....वैसे उसका दोष भी क्या है," शांतनु आकर सत्यवती के पास बैठ गये, "जब मैंने ही उसका युवराजत्व छीन लिया; जब उसे कौरवों का राजा ही नहीं बनना है; जब उसे प्रजा का पालन ही नहीं करना है, तो वह कार्य किसके लिए करे. राज-काज में अपना मस्तिष्क क्यों खपाये. ऐसे में उसमें ज्ञान की प्रवृत्ति बढ़ रही है, तो गलत भी क्या है...."

सत्यवती बोली तो उसके स्वर कुछ अधिक ही उत्तेजित था, "मुझे बार-बार न सुनायें. उसने स्वयं वचन दिया था. उसे किसी ने बाध्य नहीं किया था."

"सत्या!" शांतनु जैसे अपने क्षोभ को संतुलित कर रहे थे, "तुम्हें कौन सुना रहा है. मैंने तो एक बात कही है."

"हां! कही तो बात ही है, पर मैं उसका अभिप्राय समझती हूं." वह बोली, "यदि आप समझते हैं कि यह सब सुनकर, मैं दया से विगलित होकर, उसे उसके वचन से मुक्त कर दूंगी, तो यह आपकी भूल है....मैं इतनी कोमल-हृदया नहीं हूं."

शांतनु हंसे; पर उस हंसी का खोखलापन स्वयं उन्हें ही चौंका गया, "तुम्हें ऐसी ही परिस्थितियों से मुक्त रखने के लिए, वह तुमसे दूर रहता है. और शायद सब कुछ भूलने के लिए ही इस प्रकार चिंतन-मनन में लगा रहता है."

"कोई नहीं लगा रहता वह चिंतन-मनन में," सत्यवती तमक कर बोली. "और न वह मुझसे दूर ही रहता है....वह आज यहां आया था."

शांतनु चौंके, "भीष्म यहां आया था?"

"हां!"

"क्या बातें हुईं?"

"मैं उससे नहीं मिली."

"क्यों?"

"मेरी इच्छा." सत्यवती कुछ और तीखी पड़ी, "और भविष्य में भी उससे नहीं मिलूंगी. आप अपने भीष्म से कह दें, कि वह मेरे प्रासाद में न आया करे. मुझे उससे मिलने में कोई रुचि नहीं है."

शांतनु ने कुछ रोष से सत्यवती को देखा, फिर जैसे उस रोष को पी गये. स्वयं को कुछ संयत किया और बोले, "कह दूंगा." फिर जैसे इतने से संतुष्ट न हो पाये हों, "क्या मैं पूछ सकता हूं, उसका दोष क्या है?"

"दोष हो या न हो." सत्यवती बोली, "इसमें विवाद की क्या बात है. मैं उससे नहीं मिलना चाहती."

शांतनु कुछ नहीं बोले.

"एक बात और है." थोड़ी देर बाद सत्यवती बोली.

"क्या?"

"मेरे पुत्र के जन्म के तत्काल बाद उसका राज्याभिषेक कर दिया जाये. सारी प्रजा और स्वयं भीष्म देख ले कि हस्तिनापुर का युवराज कौन है."

शांतनु अपने चिंतन में डूबे-डूबे, जैसे बड़ी बाध्यता में बोले, "तुम्हारी इच्छा पूरी होगी."

शांतनु अपने परामर्श-कक्ष में बैठे सूचनाएं सुन रहे थे. एक के बाद एक चर आ रहे थे और विभिन्न क्षेत्रों के समाचार उन्हें दे रहे थे. शांतनु जैसे राजा की दिनचर्या पूरी कर रहे थे....उन समाचारों में कुछ भी असाधारण नहीं था....कुछ समाचार पड़ोस के राज्यों के विषय में थे, कुछ अपनी प्रजा के विषय में, कुछ सेना और सेनापतियों के विषय में....

अगला चर हाथ जोड़कर खड़ा था, कह कुछ भी नहीं रहा था. इस व्यतिक्रम से शांतनु का ध्यान भंग हुआ, "क्या बात है?"

चर ने पुनः हाथ जोड़े, "राजन! बड़े द्वंद्व में हूं. कहने योग्य भी नहीं लगता, किंतु आपको सूचित ये बिना भी नहीं रहा जाता."

कुछ क्षणों तक शांतनु सोचते रहे : ऐसी कौन-सी बात है कि चर के मन में द्वंद्व है. कुछ भयभीत-सा भी लग रहा है.

"कहो।" वे बोले, "अभय देता हूं."

"महाराज!" चर बोला, "राजपरिवार के सदस्यों पर दृष्टि रखने के लिए हमारी नियुक्ति नहीं हुई है. मेरी इच्छा भी वह नहीं थी. फिर भी मेरी दृष्टि में एक बात आयी है. आपको सूचित करना चाहता हूं."

चर फिर मौन यहां गया और शांतनु फिर से सोचने लगे.

अंततः शांतनु ही बोले, "राजपरिवार के किसी सदस्य ने कुछ अनुचित किया है क्या?"

"मैं उसे अनुचित कर्म तो नहीं कहूंगा; किंतु उससे भविष्य में प्रजा के अनिष्ट की संभावना उत्पन्न होने का अवसर आ सकता है. इसलिए उसकी रोकथाम..."

शांतनु ने चर की पूरी बात नहीं सुनी : ऐसा कौन सा कर्म है, जो अनुचित तो नहीं है, किंतु भविष्य में उससे अनिष्ट की संभावना है?....

"स्पष्ट कहो चर!" वे बोले, "मेरा आदेश है."

"महाराज! राजकुमार भीष्म ने गंगा-तट पर एक कुटीर का निर्माण करवाया है; और वे अपना अधिकांश समय उसी में व्यतीत करते हैं..."

शांतनु के मन में आया कि कहें : 'गंगा-तट पर भीष्म ने एक कुटिया बनवा ली है, तो क्या हुआ? यह सारी भूमि उसी की है. सारा कुरु-राज्य उसका है. वह चाहे तो प्रासादों के नगर का निर्माण करवा ले...' किंतु दूसरे ही क्षण उनका ध्यान सत्यवती की ओर चला गया....क्या यह भी सत्यवती की ओर से उपालंभ दे रहा है? क्या यह सत्यवती की ओर से भीष्म पर चित्रांगद की भूमि हड़पने का आरोप लगा रहा है?...पर नहीं! इसे उसकी क्या आवश्यकता है....उसने कहा है कि कर्म अनुचित नहीं है; किंतु भविष्य में प्रजा का अनिष्ट...क्या इसका संकेत भविष्य में संभावित भीष्म और चित्रांगद के संघर्ष की ओर है? पर नहीं! उसने कहा है कि भीष्म अपना अधिकांश समय गंगा-तट की कुटीर में व्यतीत करता है...तो क्या वह राजप्रासाद में नहीं रहता?....

"भीष्म क्या करता है कुटीर में?" सहसा उन्होंने पूछा.

"चिंतन-मनन, ध्यान...!"

शांतनु के मस्तिष्क में विद्युत कौंध गयी....गंगा-तट की कुटिया में भीष्म चिंतन-मनन और ध्यान करता है...इस वय में...क्या वह वानप्रस्थ की ओर बढ़ रहा है? ...लगा, उनके मन में जैसे कशा फटकारते हुए, भीष्म को डांटा, 'क्या कर रहे हो वत्स! यह तुम्हारा वानप्रस्थ का वय नहीं है. तुम्हें कुटिया में नहीं, प्रासाद में रहना चाहिए. जीवन के भोगों से विमुख नहीं, उनमें प्रवृत्त होना चाहिए....' और उनका अपना विवेक जैसे भीष्म का रूप धारण कर उनके सम्मुख खड़ा हो गया, "तात! मैंने अपना ब्रह्मचर्य आश्रम पूर्ण कर लिया है. गृहस्थ आश्रम आपको समर्पित कर दिया है. अब उसके आगे वानप्रस्थ ही तो है. अतीत तो कभी भी नहीं लौटता. वर्तमान के द्वार बंद हो जायें, तो फिर भविष्य की ओर ही देखना पड़ता है. मैं भी आगे ही चल रहा हूं पितृश्री!" उनकी कल्पना जैसे साक्षात् हो गयी, "मैं कुछ अनुचित तो नहीं कर रहा तात?"

उसे अनुचित कैसे कह दें शांतनु! वह तो कुछ भी अनुचित नहीं कर रहा. जो सुनता है, उसकी प्रशंसा करता है. उसे सराहता है. उसकी युवावस्था में ही सब लोग उसकी महानता बखानने लगे हैं....पर शांतनु अपने उस मन का क्या करें, जो उन्हें बार-बार धिक्कार रहा है कि गंगा को रुष्ट कर, जिस देवव्रत को उन्होंने गंगा में डूबने से बचाया था, उसे पाल-पोसकर, इतना बड़ा कर, उन्होंने अपने हाथों से उसी गंगा को समर्पित कर दिया था. गंगा-तट पर रहकर वह जीवन-मुक्त तो नहीं हुआ, पर वह गंगा का ही हो गया, ऐसे वह शांतनु के काम का नहीं रहेगा.

वे अपने चिंतन से उबरे. देखा, सामने चर खड़ा था. बोले, "तुम जाओ चर! और हां! शेष लोगों से कह दो. अब और कोई न आये. शेष चरों की बात फिर कभी सुनूंगा. इस समय मेरा मन स्वस्थ नहीं है!...."

चर के चेहरे का रंग उड़ गया, "क्या मेरी सूचना से महाराज का मन अस्थिर हो गया?"

शांतनु के मन में आया, उसे डपट कर भगा दें; पर डपटने का कोई कारण तो हो. किसी प्रकार धैर्य रख कर बोले, "अस्थिरता तो मेरे अपने मन में है चर! तुम्हारी सूचना ने तो उसे केवल जगा दिया है. जाओ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है. तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा."

चर ने बड़ी शालीनता से हाथ जोड़कर सिर झुकाया, "राजा के हित में सबका हित है; और राजा के अहित में ही सबका अहित है देव!"

शांतनु, चर को बाहर जाते देखते रहे...क्या कह गया चर? भीष्म ने वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया तो भविष्य में अनिष्ट होगा. राजा का भी अहित होगा, प्रजा का भी.... सिद्धांत रूप में शांतनु चर की बात से सहमत नहीं हो सकते. हो सकता है, वह चर का भी सत्य न हो. मात्र उसका शिष्टाचार ही हो. राजा की चाटुकारिता [illegible]...किंतु भीष्म [illegible] संदर्भ में वह सत्य ही बोल गया है. भीष्म का वानप्र[illegible] जाना, न शांत[illegible] के लिए शुभ है, न प्रजा के लिए. और उनका मन कहत[illegible] कि यह सत्यव[illegible] और उसके पुत्रों—चित्रांगद और विचित्रवीर्य के लिए भी शुभ नहीं है....

शांतनु को लगा, उनके हृदय में पुत्र-शोक की विह्वलता है...आज उन्हें अनुभव हो रहा था कि मनुष्य का सहज मन प्रकृति ने कुछ ऐसा बनाया है कि त्रिकाल-सत्य आदर्शों पर स्वयं चलने का तो वह साहस ही नहीं करता, अपने प्रियजनों को उन आदर्शों की ओर बढ़ते देखकर कोई भी प्रसन्न नहीं होता...रामराज्य को त्याग कर वनवास के लिए चले गये थे तो दशरथ उनके त्याग से प्रफुल्लित नहीं हुए थे. उन्होंने उसी शोक में प्राण दे दिये थे...शांतनु ने तो भीष्म के त्याग को बहुत सराहा था; किंतु उसका वानप्रस्थ ग्रहण करना...शांतनु के मन में रह-रहकर टीस उठ रही थी...शायद सत्यवती ने इसका अनुमान बहुत पहले कर लिया था, तभी तो उसने बहुत स्पष्ट और कठोर शब्दों में कहा था कि उसे अपने पुत्रों के लिए भीष्म का सान्निध्य और साहचर्य काम्य नहीं है....

सहसा उनका मन चेता! उन्हें लगा, वे समय से बहुत पहले ही शोक करने बैठ गये हैं. अभी तो कुछ भी नहीं बिगड़ा है. भीष्म जीवित है और स्वस्थ है. अभी उसने गंगा-तट पर एक कुटिया मात्र बनायी है. अभी वह चिंतन-मनन और ध्यान ही कर रहा है...अभी कुछ नहीं बिगड़ा है....यदि अभी भी वे प्रयत्न करें तो संभवतः भीष्म इस मार्ग पर आगे नहीं बढ़ेगा....हां! आगे नहीं बढ़ेगा. तो? संसार में स्थिर तो कुछ भी नहीं है. भीष्म जहां खड़ा है, वहीं खड़ा नहीं रहेगा, आगे भी नहीं बढ़ेगा...तो क्या पीछे लौट आयेगा? क्या संभव है, पीछे लौटना? धनुष से छूटा हुआ बाण क्या वापस तूणीर में लौटा है कभी?...और भीष्म के वापस लौटाने का क्या अर्थ है? क्या शांतनु उससे कहें कि वे उसे उसकी 'प्रतिज्ञा' से मुक्त करते हैं? भीष्म फिर से युवराज बन जाये और विवाह कर ले....क्या यह संभव है?....क्या सत्यवती के पिता को दिये गये वचनों से मुक्त करने का अधिकार शांतनु को है?...और यदि वे ऐसा कुछ कर भी दें तो सत्यवती मान जायेगी क्या?...और स्वयं भीष्म?"....

राजा को बहुत देर तक किंकर्तव्यविमूढ़ बैठा देखकर, वृद्ध मंत्री विष्णुदत्त ने चिंता प्रकट की, "राजन का स्वास्थ्य....?"

"स्वास्थ्य तो ठीक है," शांतनु का उत्तर था, "किंतु लगता है कि अब राजकाज संभाले रखने की स्थिरता मन में नहीं रही."

"ऐसा क्या हो गया राजन?"

"सारथि को रथ लाने के लिए कहलवा दें।...."

रथ में बैठ कर भी शांतनु तय नहीं कर पाये कि वे कहां जायें...अपने प्रासाद में जाकर अपने अकेले कक्ष में औंधे मुंह पड़े रहें, या भीष्म के पास जाकर, उसे समझा-बुझाकर लौटा लाने का प्रयत्न करें....या सत्यवती के पास जाकर अनुरोध करें कि वह अपने पिता की ओर से, भीष्म को उसके वचनों से मुक्त कर दे....

सारथि ने रथ हांक अवश्य दिया था, किंतु उसका असमंजस स्पष्ट था. राजा ने उसे कोई स्पष्ट आदेश नहीं दिया था. और राजा की यह विचलित मनःस्थिति देखकर कुछ पूछने का उसका साहस भी नहीं हो रहा था....राजा की यह भंगिमा उसके लिए नयी नहीं थी. राजा में रजस तत्व कुछ अधिक ही था. उनके आवेश का आरोह-अवरोह बहुत उग्र और स्पष्ट होता था....जब पहली बार यमुना-तट पर सत्यवती को देखकर, दासराज से याचना कर, राजा निराश हुए थे—तब भी उनकी स्थिति कुछ ऐसी ही हो गयी थी, शायद इससे भी कहीं हीनतर.

"महाराज विश्राम करेंगे?" अंततः सारथि ने पूछा.

"हां!" शांतनु पूर्णतः अन्यमनस्क थे.

"किस प्रासाद में ले चलूं?"

शांतनु जैसे निद्रा से जागे, "महारानी सत्यवती के प्रासाद."

"**म**हाराज आज कुछ असमय पधारे हैं." सत्यवती के मन में कोई विशेष उल्लास नहीं था, "सब शुभ तो है?"

"तुमसे कुछ बातें करनी हैं सत्या!" शांतनु सत्यवती के कक्ष की ओर बढ़ चले, "महत्वपूर्ण बात है, इसलिए चाहूंगा कि पूर्ण एकांत हो. दासियों को भी हटा दो."

सत्यवती ने उनके पीछे कक्ष में प्रवेश किया और कपाट भिड़ा दिये, "क्या बात है महाराज?" और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने स्वयं ही कहा, "क्या आप तक भी सूचना पहुंचा दी गयी?"

सत्यवती पलंग पर लेट गये शांतनु के पास आकर बैठ गयी.

अगले अंक में

भीष्म की चर्चा कहां जाकर फिर से छिड़ी? क्या भीष्म ने कुटिया छोड़कर प्रासाद में रहना स्वीकार किया और क्या सत्यवती सम्राट के नाजुक मिजाज को समझ सकी?

आज, जिस तेजी से बदलते समय में हम जी रहे हैं, यह जरूरी हो गया है कि फैशन की दुनिया में हो रहे हर पल के बदलाव को परखा जाये. लोगों की रुचियों, उनकी सीमाओं और समय की रफ्तार के अनुसार फैशन जगत को प्रभावित करने वाले केंद्र अपनी कार्य-प्रणाली में अधुनातन संसाधनों का इस्तेमाल करें. कास्मेटिक्स की दुनिया से अलग एक और दुनिया है किसिम-किसिम के परिधानों की....रंग-बिरंगी और डिजाइनदार दुनिया. जनवरी से लेकर दिसंबर तक मौसम के बदलाव के साथ-साथ हमारे मन और उमंग को निर्देशित करने वाली प्रवृत्ति में भी बदलाव आता है. कभी हम हल्के और कोमल रंगों के कपड़े पहनना चाहते हैं तो कभी तेज और चटख रंग हमें प्रभावित करते हैं. इस डिजाइनिंग का व्यवसाय इसीलिए आज एक बड़ा व्यवसाय हो गया है. श्री कृष्ण लाल रामजी दामनिया जैसे चोटी के लोगों ने इस व्यवसाय को आजादी के पहले से ही गति देनी प्रारंभ कर दी थी. सूटिंग और शर्टिंग के दायरे में श्री श्याम सिल्क मिल्स व 'मिकाडो', संटागन सिल्क मिल्स, फेबीना टेक्सटाइल्स, बी.के. फेब्रिक्स और अन्य बहुत-सी कंपनियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है.

बच्चों के फ्राक, कुर्ते पाजामे और पेंट-कमीज से लेकर पुरुषों एवं महिलाओं के तमाम परिधानों के क्षेत्र में नये डिजाइन और नये रूप रंग सामने आ रहे हैं. सूती हो या रेशमी, सिल्क हो या खादी, पोलियस्टर हो या हैंडलूम....हर क्षेत्र में नया से नया कर गुजरने की होड़ लगी है. सभी निर्माता अपने वितरकों के माध्यम से, तेजी से बदलते फैशन पर निगाह लगाये बैठे हैं. फैशन के मिजाज में बदलाव आते ही वे तुरंत अपनी पहल करने को उत्सुक रहते हैं. बाहर के कपड़ों के साथ-साथ भीतर से पहने जाने वाले कपड़ों के नये फैशन पर भी निर्माता ध्यान दे रहे हैं. आज आप चुस्त-दुरुस्त पोशाक में निकलिए और कल मौसम का मिजाज बदल जाये तो कौन जाने ढीले-ढाले कपड़ों की बहार आ जाये! जीन्स की दुनिया में चूड़ीदार पाजामा और कुर्तों की दुनिया में कमीजों का छा जाना कोई पत्थर की लकीर नहीं है. अब आप सोचिये मत, बाजार में नजर दौड़ाइये और देखिए कहीं आप पिछड़ तो नहीं रहे हैं! □

आज के फैशन की नयी उमंग : नयी सज-धज के नये रूप-रंग

संघर्ष और कर्मनिष्ठा के प्रतीक : श्री कृष्णलाल रामजी दामनिया

श्री कृष्णलाल रामजी दामनिया का जन्म दमन में सन् 1908 में हुआ. यह पुर्तगाली शासन का समय था. पांच वर्ष की छोटी उम्र में ही इनके जीवन का संघर्षमय दौर प्रारंभ हो गया जब इनके पिता इन्हें छोड़कर चल बसे. इनकी शिक्षा कक्षा सात तक ही संभव हो सकी. इसके बाद पारिवारिक दबाव कुछ इस तरह के हो गये कि इन्हें अपनी पढ़ाई छोड़कर कस्बे की जिंदगी प्रारंभ करनी पड़ी.

अपना कस्बा छोड़कर ये साधनों की खोज में बंबई चले आये. बंबई में इन्होंने एक लेडीज ड्रेस मेकर के सहायक के तौर पर काम शुरू कर दिया. धीरे-धीरे ये इस व्यवसाय की बारीकियां भी सीखते चले गये. सन् 1937 में, जब इनकी उम्र महज 29 साल की थी, इन्होंने नौकरी छोड़ दी और लेडीज मेकर का अपना व्यवसाय शुरू कर दिया. यह वह समय था जब केवल अंग्रेज और उच्च भारतीय समाज ही इस तरह के आधुनिक परिधानों का इस्तेमाल करता था. यही वजह थी कि श्री कृष्णलाल रामजी दामनिया अंग्रेजों और उच्च वर्ग के संपर्क में आये. उनकी दैनिक जरूरतों की बारीक परख इन्हें होती चली गयी.

कुछ नया कर गुजरने की महत्वाकांक्षाओं के रहते इन्होंने ब्रेजियर्स बनाने का काम छोटे स्तर पर शुरू कर दिया. यह वह समय था जब समूचे हिंदुस्तान में एक भी ब्रेजियर्स निर्माता कंपनी नहीं थी. यही वजह थी कि ब्रेजियर्स की जरूरत को पूरा करने के लिए आयात पर निर्भर रहा जाता था. साल-दर-साल तरक्की का रास्ता नापते हुए इन्होंने अपने ब्रांड का नाम 'विज' रखा. (BRIDALI FORM) नाम रजिस्टर्ड करवाने के बाद तो इन्होंने फिर कभी पीछे मुड़कर ही नहीं देखा. ब्रा-बाजार में जब नये-नये लोग संघर्ष करने लगे तो इन्होंने अपने उत्पादन में नयी तकनीकों का इस्तेमाल प्रारंभ कर दिया. सन् 1954 में तो इन्होंने अमरीकी तकनीक से ब्रा तैयार करने वाली मशीनों को अपने कारखाने में लगवा लिया.

सन् 1964 में इन्होंने महिलाओं के लिए अन्य भीतरी वस्त्र भी बनाने शुरू कर दिये. समाज के सभी वर्गों की जरूरतों को पूरा करने की दिशा में भी इन्होंने प्रयास प्रारंभ कर दिये.

समय के साथ-साथ 'ब्रा' में अपने रंग और रूप परिवर्तित किये. जल्दी ही 'ब्रा' भारतीय फैशन-संसार का एक अंग बन गयी. बाजार और समय को देखते हुए धीरे-धीरे बहुत से डिजाइनों में प्रयोग किये गये.

सन् 1968 में जब विश्व स्ट्रेच-क्रांति से प्रभावित हुआ, ठीक इसी वक्त

ब्रॉनिमांता भी इससे प्रभावित हुए. बाबाजार में यह प्रयोग बहुत लोकप्रिय हुआ. BRIDAL FORM अपनी विश्वसनीयता और अच्छी क्वालिटी की वजह से सीलोन और पूर्वी अफ्रीका, फीजी आदि में भी जा पहुंचा. वहां ग्राहकों ने इसे पूरे विश्वास के साथ अपनाया.

अपनी महत्वाकांक्षाओं को फली भूत होता देखने के बाद इन्होंने व्यवसाय से अवकाश ले लेना उचित समझा. ये अब अपने जन्म स्थान वापस चले आये. यह सन् 1972 का वक्त था.

उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से दमन में लगाये गये कारखाने की देखभाल ये अवकाश लेने के बाद भी फोरी तौर पर करते रहे. ज्योतिष के प्रति इनमें अद्भुत लगाव था. अवकाश के समय में ये ज्योतिष संबंधी ग्रंथों का पाठ करते और ज्योतिष-विज्ञान को आगे बढ़ाने की दिशा में काम करते रहते. अपने मित्रों और संबंधियों के बीच ये देश के सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषियों में गिने जाते रहे. कभी भी अपने ज्ञान और विद्वता को लेकर ये सार्वजनिक तौर पर सामने नहीं आये. अपने ज्ञान को वे रुचि के मुताबिक इस्तेमाल करते रहे. 27 जून, सन् 1985 को इनका असामयिक निधन हो गया. पारिवारिक संपन्नता और औद्योगिक विकास के तमाम सोपानों को देखने के बाद स्वर्गवासी हुए इस महापुरुष का जीवन संघर्ष और कर्मनिष्ठा के प्रति समर्पण को प्रोत्साहित करने वाला एक जीवंत इतिहास है. □

फेबीना : ग्राहकों की अपनी पसंद

फेबीना टैक्सटाइल (प्रा.) लिमिटेड की कहानी विकास और उन्नति का दस्तावेज है. फैशन की दुनिया में फेबीना ने अपना अलग इतिहास बनाया है. सन् 1962 से ही, आधुनिकतम तकनीकों के इस्तेमाल करने की वजह से फेबीना सूटिंग और शर्टिंग की दुनिया में पहली पंक्ति में रहा है. जो लोग सर्वोत्तम पहनावे के प्रशंसक हैं...उनके बीच फेबीना सर्वाधिक फैशन-संपन्नता की पहचान बन गया है.

यह सब महज इसलिए संभव हो सका है कि फेबीना उपलब्ध आधुनिकतम संसाधनों को लेकर चलता है. तेज रफ्तार आधुनिक वीविंग सिस्टम, मल्टी कलर शटलमैस लूम्स कल्यान स्थित फैक्ट्री में उपलब्ध हैं.

डाई हाउस में नव्यतम तेज-रफ्तार जेट डाइंग हीट सेटिंग सिस्टम भी उल्लेखनीय है.

यह अधुनातन तकनीक ग्राहकों को उत्तम कोटि का टेक्सटाइल उपलब्ध कराने में एक आदर्श स्थापित कर चुका है. विश्व भर में फैले वितरकों के माध्यम से 'डिजाइन डिपार्टमेंट' नये से नये स्टाइल और फैशन के संपर्क में रहता है.

प्रतिभावान, रचनात्मक डिजाइनरों की एक पूरी टीम आने वाले समय के फैशन तैयार करती है. फेब्रिक के विविधतापूर्ण संयोजन और शेड्स तो फेबीना की विशेषता है ही, मेटीरियल के हिसाब से ही उल्लेखनीय है.

फेबीना शूटिंग और शर्टिंग का रेंज बहुत आकर्षक, मौलिक और उचित कीमत का होता है. 100% पॉलियस्टर के सूटिंग-शर्टिंग में प्लेन और डिजाइन वाले दोनों तरह का कपड़ा उपलब्ध है. बदलते हुए समय और समाज की रफ्तार के बीच फेबीना यह सिद्ध कर चुका है कि उसे फैशन के बदलते हुए ट्रेंड और ग्राहकों की पसंद की पूरी पहचान है.

सचमुच, फेबीना ग्राहकों की अपनी पसंद है! इसमें आश्चर्य कैसा? □

क्षितिज पर एक नये सूर्य का उदय

उद्देश्य की एकता और दृढ़ निश्चय आश्चर्यजनक उपलब्धियां प्राप्त कर सकते हैं. इसका प्रमाण है आज से केवल पांच वर्ष पूर्व इस मातृत्व एवं मैत्रीपूर्ण व्यवस्था का, जिसमें व्यापार एवं उद्योग की चार शाखाओं के अनुभवी, उत्साही एवं क्षमतावान नवोदित उद्यमियों ने एक साथ, एक दिशा में चल कर सफलता एवं उन्नति प्राप्त की.

अच्छी किस्म का माल, उचित मूल्य, नवीनतम तकनीक का उत्पादन में प्रयोग, पूर्व नियोजित कार्यक्रम एवं उनका योजनाबद्ध क्रियान्वयन आधुनिक व्यावसायी प्राणाली तथा उत्पादन सहित क्रय-विक्रय की उत्कृष्ट नीति ही वे दिशा निर्देशक प्रकाश-स्तंभ हैं, जो श्री श्याम सिल्क मिल्स एवं उसके उत्पादन, जो कि 'मिकाडो' के नाम से लोकप्रिय एवं विख्यात हैं, अन्य सबसे पृथक किंतु सर्वोपरि स्थान पर उपभोक्ता, निर्माता एवं व्यावसायिक जगत में देखे जाते हैं, माने जाते हैं.

श्री श्याम शूटिंग्स प्रा. लि. एवं मिकाडो उस मंजिल का नाम है जिस पर चलकर आने के लिए चार उमंग भरे व्यक्तियों ने एक सामूहिक एवं संयुक्त प्रयास एक छोटी-सी पगडंडी से आज 4-5 वर्ष पूर्व किया था. ये परिश्रम एवं बुद्धिमता से सपने साकार करनेवाले व्यक्ति व्यवस्थापन, एकाउंट्स, उत्पादन और क्रय-विक्रय की प्रणालियों एवं नीतियों के पारंगत एवं विशेषज्ञ थे, उनके अदम्य साहस एवं परिश्रम ने श्री श्याम सिल्क मिल्स की स्थापना को एक गतिशील औद्योगिक इकाई बना दिया जो कल्पनातीत उन्नति एवं प्रगति की सीढ़ियों पर निरंतर चढ़ती जा रही है.

गुजरात के बापी नगर में श्री श्याम सिल्क मिल्स का 40 करघों वाला संयंत्र इस समय काम कर रहा है. इस वर्ष के अंत तक और 48 स्वचालित करघे इसमें लगा दिये जायेंगे. इसी वर्ष के अंत तक तारापुर में श्री श्याम सिल्क मिल्स का टेक्स्चराइजिंग तथा डबलिंग यूनिट तथा रंगाई धुलाई, प्रिंटिंग तथा फिनिशिंग का यंत्र-संकुल भी लक्ष्य के अनुसार स्थापित हो जायेगा.

प्रथम वर्ष अपने कुल उत्पादन 1.25 लाख मीटर वस्त्र के गुणांक को प्रतिवर्ष आगे बढ़ाते हुए 1984 में यह आंकड़ा 7 लाख मीटर तक पहुंचा. 1985 में पंद्रह लाख मीटर तथा 1986 में 25 लाख मीटर तक इसे पहुंचाने का प्रयत्न है.

कुशल कार्यप्रणली एवं सुनियोजन के आधार पर आगामी 3 वर्षों के कार्यक्रम का प्रावधान इस प्रकार है :–

कुल उत्पादन क्षमता....80 लाख मीटर प्रति वर्ष.

प्रोसेसिंग क्षमता....60 लाख मीटर प्रति वर्ष.

यार्न टेक्स्चराइजिंग क्षमता....1000 टन प्रति वर्ष.

आगामी वर्षों में श्री श्याम सिल्क मिल्स अन्य कई प्रकार के वस्त्रों के उत्पादन के साथ-साथ मिकाडो की परंपरा में सिले-सिलाए वस्त्र भी बनाने की योजना क्रियान्वयन हेतु हाथ में लिये हुए हैं.

मुनासिब दाम, मजबूती, खूबसूरती एवं शानदार लदाक मिकाडो की पहचान है. इसी कारण भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में मिकाडो वस्त्रों की मांग है. वह समय दूर नहीं जब निर्यात द्वारा श्री श्याम सिल्क मिल्स की साख विदेशों तक पहुंच जायेगी.

क्षितिज पर उगता यह नया सूरज आगामी कुछ ही वर्षों में अपनी रोशनी से सारे जगत को चकाचौंध कर दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं. □

■ रुक्मिणीबाई पवार ■ पूज्य छगनबप्पा
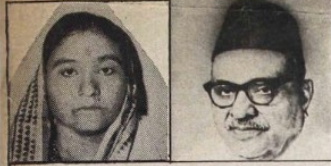
श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़

दस हजार महिला सदस्यों वाले 'श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़' का अब तक का इतिहास अन्यतम, महान और स्पृहणीय है. खादी एवं ग्रामीण उद्योग आयोग के अंतर्गत काम कर रही इस सोसाइटी का वार्षिक टर्न-ओवर 16 करोड़ रूपए है.

वैधानिक तौर पर यह एक रजिस्टर्ड सोसाइटी है जिसका रजिस्ट्रेशन सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 1860 के तहत हुआ है और एक पब्लिक ट्रस्ट है जो बंबई पब्लिक ट्रस्ट एक्ट, 1950 के तहत रजिस्टर्ड है. दरअसल, यह दस हजार बहनों का संयुक्त उत्साह है जो समूचे भारत में पूरी लगन से काम कर रहा है.

लिज्जत का प्रारंभ बंबई में हुआ था परयह समूचे देश में...दिल्ली से कोचीन और कच्छ से कलकत्ता तक फैली शाखाओं के जरिए काम कर रही है. पापड़ बेलने में सक्षम सभी महिलाएं इसकी सदस्य हो सकती हैं. सोसाइटी के सभी अधिकारी, जैसे—अध्यक्ष, सचिव, प्रबंध समिति के सदस्य आदि भी इन्हीं सदस्य महीलाओं में से चुने जाते हैं. लिज्जत की तमाम उल्लेखनीय उपलब्धियों और स्थितियों के लिये यही महिला सदस्य प्रसंशा की पात्र है.

यह भी एक आश्चर्यजनक इतिहास का आरंभ कहा जाना चाहिए कि 27 वर्ष पहले लिज्जत ने केवल सात महिला सदस्यों और उधारी के अस्सी रूपयों से जिस तरह काम शुरू किया...यह एक दुस्साहसिक प्रयोग था. इसका श्रेय भी आचार्य विनोबा भावे के उस उपदेश को जाता है जिसके तहत आत्मनिर्भरता के जरिए शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठित किया गया था. संस्था के मालिकाना अधिकारों सहित सभी का एक पविार की तरह रहना इसका एक स्वप्न था. छगनबप्पा जैसे सामाजिक कार्यकर्त्ता ने लिज्जत की सदस्य बहनों को विविध प्रकार की मदद की है. मुसीबत के दिनों में भी वे उन्हें समझाते-बुझाते रहे हैं कि व्यावसायिक व्यवहार में अच्छी क्वालिटी कितना महत्व रखती है. सोच का यह स्तर सचमुच बड़े विचार को जन्म देता है. तब से अब तक लिज्जत प्रतिवर्ष पचास प्रतिशत 50 प्रतिशत के हिसाब से उन्नति करता चला आ रहा है.

इस सोसाइटी को समझने के लिए 'द बेसिक कांट्स एंड ट्रेडिशंस ऑफ अवर इंस्टीट्यूशन' बुकलेट को पढ़ना जरूरी है. यह बुकलेट सोसाइटी की सभी शाखाओं में निःशुल्क उपलब्ध है.

सोसाइटी शीघ्र ही अपनी शाखाएं राजस्थान, कर्नाटक, पंजाब, और दूसरे राज्यों में खोलने पर विचार कर रही है. सदस्यों की संख्या बाइस हजार और वार्षिक टर्न-ओर करीब 50 करोड़ तक बढ़ाने पर सोसाइटी विचार कर रही है. □

पांच वर्षों में चमत्कार सेंटोगन सिल्क मिल्स प्रा. लि.

कंपनी का शुभारंभ सन् 1981 के उत्तरार्ध में हुआ था. तब से अब तक के पांच सालों में यह कंपनी धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर है.

पहले-पहल कंपनी ने सूटिंग-शर्टिंग का उत्पादन किया था...पर अब साड़ियां और अन्य ड्रेस मेटिरियल भी सिंथेटिक यार्न से बनाने शुरू कर दिये हैं. कंपनी के उत्पादन मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग के बीच अधिक लोकप्रिय हैं.

वीविंग, प्रोसेसिंग और प्रिंटिंग के लिए कंपनी के पास आधुनिकतम मशीनें मौजूद हैं. टैक्स्चराइजिंग की सुविधा के लिए कंपनी का अपना प्लांट तो है ही सेंट्रोटेक्स टैक्स्चराइज्ड यार्न तो बाजार में बेहद लोकप्रिय है.

देश भर में, कंपनी की वितरण-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए डीलरों की अच्छी व्यवस्था है. सन् 1981 में 1.5 करोड़ से बढ़कर कंपनी का टर्न ओवर 31 करोड़ हो गया है. कंपनी की योजना है कि आधुनिकतम तकनीक के हिसाब से साधन जुटाये जायें.

पाताल गंगा स्थित कंपनी की यूनिट शीघ्र ही उत्पादन प्रारंभ कर देगी. □

बीके फ्रेब्रिक्स : महत्वपूर्ण उद्योग

कंपनी का प्रारंभ सन् 1969 में श्री बालकिशन एम. रोचलानी ने बतौर ट्रेडिंग हाउस किया था. सन् 1974 में हमने सिलवाया वैपी में छोटी यूनिट लगाई. आज यह आधुनिक प्रोसेसिंग हाउसों में इस जगह की सबसे बड़ी संस्था है. एक ही संस्थान में यार्न और कपड़ा फिनिश होने का काम किया जाता है...सूटिंग, शर्टिंग और अन्य ड्रेस मैटिरियल के रूप में.

अपने व्यावसायिक आयोजन की वजह से यह संस्था बहुत जल्द लोकप्रिय हो गयी. यह प्रोग्राम है बीके. अंताक्षरी. आजकल 'बीके.' साड़ियों की दुनिया में एक महत्वपूर्ण नाम है. श्री बी.एम. रोचलानी एक प्रोसेस हाउस और वीविंग यूनिट के साथ-साथ यार्न मेन्युफेक्चरिंग का काम भी शुरू करने के लिए प्रयत्नशील हैं. टेक्सटाइल के अतिरिक्त वे अपनी डाई, केमिकल और पूर्ण ईंधन भी बनाते हैं जो कोयले की जगह काम आता है. इनके प्रोसेस हाउस में प्रिंटिंग, डाईंग मर्सराइजिंग आदि ऑपरेशन संपन्न होते हैं.

सिलवासा केंद्र शासित प्रदेश में यह एक मात्र प्रोसेस हाउस है. वितरण का काम यहां से समूचे देश में होता है. भविष्य की योजनाओं में सिलवासा में ही एयर-जेट और वाटर-जैट लूम्स का काम प्रमुख है. ईंधन और टैक्सचराइजिंग यूनिट पहले ही एक कंपनी में मिला लिए गये हैं. इस कंपनी का नाम है—'ब्लयू शिप टैक्सफयूल इंडस्ट्रीज लि.'.

संस्था द्वारा बनाई गई डाई और केमिकल न केवन इस संस्था में प्रयोग की जाती है वरन् देश भर में इनका निर्यात होता है. संपूर्ण ईंधन प्लांट देश का दूसरा प्लांट है. देश में ऐसे केवल दो ही प्लांट हैं □